विषय--सूची

※ समर्पण ※

अनन्त श्री गुरुदेवजीके करकमलोंमें

प्रभो ! आपकी लीला अपरंपार है। यद्यपि कई महानुभावों ने पत्रोंद्वारा आग्रह किया कि 'मानस-पीयूष' तथा 'विनय-पीयूष' के समान श्रीमद्‌गोस्वामीजीके अन्य ग्रन्थोंकी भी (पीयूष) टीका लिखी जाय, तथापि 'विनय-पीयूष' के छपाने में जो अत्यन्त कष्ट हुआ, उससे जी ऊब गया। दूसरे, अब शरीरका ८४ वाँ वर्ष चल रहा है। वृद्धावस्थाका पूरा शृङ्गार शरीरने धारण किया है। शिर हाथ काँपते हैं, नेत्रकी दृष्टि मंद पड़ गयी है। स्मरण शक्ति का अत्यन्त ह्रास है।—इत्यादि कारणोंसे संकल्प तो यही था कि अब कुछ न लिखूँगा। फिर भी श्री 'हनुमान बाहुक' की 'पद्यार्थ, बृहत् भूमिका एवं प्रयोगों सहित टीका' तथा 'पीयूष वर्षिणी' टीका आपने खेल रचकर करा ही ली।

अभी तक श्रीरघुनाथजीके चरित और गुण गाये थे, भक्तचरित न गाया था। श्रीमहारानीजीने श्रीहनुमान्‌जीको मेरा रक्षक नियुक्त कर दिया और आपने अञ्जनीनन्दन शरण नामकरण किया, फिर भी मैंने उनका गुणगान नहीं किया, कदाचित् इस भारी दोषकी निवृत्तिके लिए यह लीला की।

मोरि सुधारत सो सब भाँती।

जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥

जो भी हो, यह आपकी लीला है, आपकी कृपा, करुणा, आश्रितवात्सल्यसिन्धुत्व ही है। अतः यह श्री 'हनुमान बाहुक पीयूष-वर्षिणी टीका' भी आपको ही सादर समर्पित है। आप इसे स्वीकार करें।

सदैव आपका ही—

अञ्जनीनन्दनशरण

कार्तिक श्रीहनुमत् जयन्ती सप्ताह २४-१०-६७

दो शब्द

श्रीगुरवे नमः श्रीहनुमते नमः श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासाय नमः

एक समय श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकी बाहुमें असह्य पीड़ा हुई जो सारे शरीरमें व्याप गई। प्रेमियोंने बहुत उपचार किये, परन्तु पीड़ा मिटानेमें वे सफल न हुए। रोग कालकृत है, कलिकृत है, देवकृत है भूतप्रेतादिकृत है, खलकृत है,— कुछ पता न चला (जैसा पद ३७–३८ से ज्ञात होता है)। उन्होंने श्रीहनुमान्जीसे रोग-निवृत्तिके लिये प्रार्थना की। सारा कुरोग श्रीहनुमत्कृपासे नष्ट हो गया, यह पद ३५ से स्पष्ट है। रोग छूटनेपर इन स्तोत्रोंको उन्होंने एकत्र कर दिया और 'हनुमान बाहुक' नाम रक्खा। श्रीसीतारामीय बाबा हरिहर-प्रसादजी भी लिखते हैं कि 'पीड़ा छूट गई; अतएव 'हनुमान बाहुक ग्रन्थ' पुस्तकका नाम पड़ा।"

'हनुमान बाहुक' की महिमाका हम लोगोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया। लोग लिख-लिखकर पाठ करने लगे। और इसकी मान्यता देख आगे कवियोंने और भी अनेक कवित तुलसीकी छाप दे-देकर यत्र-तत्र इसमें जोड़ दिये।* छापेखाने

---

* 'शिवसिंह सरोज' में एक पद यह है—"हनुमान बाहुक। झूलना। जयति हनुमान बलवान पिंगाक्ष शुचि कनकगिरि सरिस तनु रुचिर धीरं। अंजनीसुवन सियरामप्रिय कीशपति दलन-निशिचर-कटक बिकट बीर दलन शक्रारिवन महाबुध ज्ञानघन सुयश कहि निगम सब सुमति धीरं। समुझि भुज जोर कर जोरि तुलसी कहै हरहु दुख दुसह भय विषम पीरं। १।"—[ह० पद १ की टिप्पणी, पृष्ठ २४६, से उद्धृत]। मु० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, की दूसरी बार सन् १८८१ फरवरी की छपी 'हनुमान बाहुक' में प्रारंभमें [पद १ और २ में] ही बाईस नये पद हैं। इसमें ५८ [अट्ठावन] पद हैं।

हो जानेपर तो प्रकाशकों द्वारा लाखों प्रतियाँ छपकर जनताके हाथोंमें पहुँचीं। प्रायः सभीनें 'हनुमान बाहुक' की महिमा गाई है कि यह सद्यः फलदायक है। केवल किसी-किसीने अन्तके पदोंके क्रमसे कुछ उलट-फेर किया है। पाठ-क्रमके परिवर्तनसे भी महिमामें न्यूनता सुननेमें नहीं आई।

श्रीपरमेश्वरीदयालजी द्वारा प्रकाशित 'श्रीहनुमान बाहुक' के वक्तव्यमें उल्लेख है:—"जो निरोग सुख चाहहु, अरु सब विधि कल्यान। करहु पाठ बाहुक सदा, अरु सुमिरहु हनुमान॥ सकल व्याधि कर औषधी, बाहुक पढ़हु निशंक। कालहु कर यह काल है, मेटत विधि कर अंक॥ करहु पाठ नित प्रेम ते, रहत प्रेत भय नाहिं। वांछित फल यह देत है, या महँ संशय नाहि॥" लखनऊवाली पुस्तकमें तो ग्रन्थारम्भ ही 'फलश्रुति' से किया गया है—'भौमवार आदिक पढ़ै जो नर सहित सनेह। रुज संकट व्यापै नही बाढ़ै सुख धन गेह॥२॥ शुचि सनेह पढ़िहैं जो नर निरुजगात बलधाम। ह्वै हैं रति तुलसीश पद यश पैहहि सब ठाम॥' और टाइटिल पेजपर उल्लेख है कि "नियम कर पाठ करनेसे अभिलाषपूर्णतापूर्वक आरोग्यता और राज्यसें शत्रुपर विजय होता और सर्वांग रोगनाश और भूत-प्रेत-पिशाच-भयनिवृत्ति होती है।"

'हनुमान बाहुक' की कोई प्रति गोस्वामीजीके समयकी या उसके निकटकी उपलब्ध नहीं है जिससे हम किसी उपयुक्त निर्णय पर पहुँच सके। डॉ० माताप्रसाद गुप्तने अपनी खोजमे तीन प्रतियोंकी चर्चा की और उनके संबंधमे अपने विचार भी प्रकट किये हैं। (तुलसीदास पृष्ठ २०७)।:—

प्रतियाँ	विचार
१ 'शिवसिंह सरोज' के पृष्ठ ११२ में दिये हुए उद्धरण।	ये उद्धरण मुद्रित पाठ से नहीं मिलते।
२ सं० १७६७ की प्रतापगढ़के राजकीय पुस्तकालय की प्रति।	मिलानेपर इसमें मुद्रित पाठके कुछ छंद नहीं मिले और इस पाठ के अन्तिम भागमें जिस क्रमसे छंद संकलित किये गये हैं वह क्रम भी मुद्रित पाठोंमे पूरा-पूरा नहीं मिलता।
३ सं० १८१० की पं० विजयानंद त्रिपाठीजी के यहाँ की प्रति।	मुद्रित पाठसे इसके पाठमें बहुत अंतर है। इसमें केवल दूसरी प्रतियोंकी अपेक्षा संख्यामें बहुत कम छन्द ही हैं वरन् उनका क्रम भी कुछ भिन्न है। यह अंतर अंतिम भागमे है।…छूटे हुए प्रसंगोंमे बाँहके अतिरिक्त शरीरके अन्य अंगोंकी पीड़ा, बरतोरके फोड़े तथा कविके (संभवतः परलोक-)यात्राके स्थल हैं।

फिर पृष्ठ २५१-२५२ में वे लिखते हैं—"'बाहुक' की प्रतियाँ यद्यपि संख्यामें बहुत मिलती हैं पर ठीक-ठीक एकही आकार-प्रकारकी प्रतियाँ बहुत कम मिलती है।…कदाचित् इस रचना के संबंधमें भी मानना पड़ेगा कि इसमें भी कुछ लिखी अंतिम रचनाएँ संगृहीत हैं जिनको कवि अंतिम रूप नहीं दे पाया था

और यही कारण है कि प्रतियोंके पाठमे परस्पर इतना अन्तर मिलता है।"

श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजीने अपने समकालीन तथा पूर्ववर्ती 'हनुमान बाहुक' के प्रकाशकोंके छन्दोंके क्रम-सम्बंधी विचार अपनी टीकाके पद ३५ की टिप्पणीमें इस प्रकार दिये हैं—"बहुतोंकी राय है कि 'हनुमान बाहुक' में अंतकी कविता यही है और 'हनुमान बाहुक' का क्रम पद १ से ३३ तक ठीक है। और ३४ वाँ पद उस समय बना था जब उनने शिव-जीसे प्रार्थना की थी और पीड़ा न छूटी तब हनुमान्से प्रार्थनाकी। जब देवताओंसे प्रार्थना करनेपर न छूटी तब ३०वाँ कवित बनाया। इसलिए किसी-किसीकी रायमें २६ कवित तक क्रमसे हैं। ३६ वें कवितमें राम और हनुमान्से प्रार्थना है। ३७वें, ३८वें कवितमें श्रीरामचन्द्रसे प्रार्थना की और पीड़ा छूटी तब ३६ वां कवित बनाया। ४०वे कवितम भी पीड़ाका वर्णन है। ४१-४२ में अपनी भूलका वर्णन किया है। ४३-४४मे कई देवोंसे प्रार्थना है। इसलिए बहुत लोग ३५ वें कविताको अन्तमे रखना उचित समझते हैं।" —इसीका सरांश फिर पद ४४ की टिप्पणी पृष्ठ २६० में वे यों लिखते हैं:—"यह तो पहले लिखा गया है कि कोई-कोई कहते हैं कि जिस समय हनुमान बाहुक' बना था उस समय संग्रह नहीं हुआ। पीछे शीघ्रतामे संग्रह हुआ। अतएव ३५ वाँ कवित जो बाहु-पीड़ा छूटनेपर बना था, वह अन्तमे न रक्खा वरन् दूसरा ही कवित अंतमे रक्खा गया।

* 'क्यों पद ३५ के बाद वे पद संगृहीत हुए जिनसे किसी-किसीको भ्रम हो गया कि रोग मिटा नही ?'—[डॉ० माताप्रसाद गुप्तने तो यहाँ तक लिख डाला है कि 'यदि प्रार्थनाओं आदि पर विशेष विश्वास न करके…दवा-दारूपर उतारू हो जाता तो आश्चर्य नहीं कि हमारा कवि कुछ और भी जीवित रहता, किन्तु वहाँ तो बातें दूसरी ही थीं'']।

उपर्युक्त पाठ-क्रम-सबंधी विचारोंको लिखकर श्रीहरिहरप्रसादजीने अपना अन्तिम निर्णय यह दिया है:—"क्रमभंग-से भी 'श्री हनुमान बाहुक' के प्रतापमें कुछ हानि नहीं है। मैंने कठिन-से-कठिन रोगोंको इसके पाठसे छूटते देखा है।"

श्रीअवधके विख्यात संत पं०श्रीरामवल्लभाशरण, रामायणी श्रीरामबालकदासजी तथा रामायणी श्रीरामसुन्दरदासजीका भी यही मत है। काशी नागरी प्रचारिणीकी 'तुलसी ग्रन्थावली' सं० २००४),श्रीवजरंगवली विशारद द्वारा संपादित'तुलसी रचनावली' (सं०१९९६) श्रीलाला छक्कनलालजी, श्रीवैजनाथजीकृत टीका'हनुमत बाहुक भूषण', बाबा जयरामदासजी (प्रमोदवन, श्रीअयोध्या) की छपाई हुई 'हनुमान बाहुक स्तोत्र' प्रथम एवं द्वितीय संस्करण (सन १९२९, सन १९३५)* तथा गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित (लगभग साढ़े तीन लाख) प्रतियोंमें भी यही क्रम है।

—इस शंकाके सम्बंधमें आखिर लोगोंने अनुमान ही तो किये हैं, वैसेही यह भी अनुमान हो सकता है कि प्रथम गोस्वामीजीका विचार पद १–३५ के सग्रहका ही नाम 'हनुमान बाहुक' रखनेका रहा हो, शेष नौ पद [३६--४४] जिनमें पूर्व श्रीरामजी एवं श्रीशिवजीसे भी रोग-निवृत्तिके लिए प्रार्थना की थी इसमें सम्मिलित करनेका विचार न रहा हो। बादको हरि-प्रेरणासे, इनको अन्तमें जोड़ दिया गया। भगवद्विमुखोंको, प्रार्थनाका महत्व न जाननेवालों एव श्रीवीर भगवान्‌की महिमामें विश्वास न रखनेवालोंको इससे वंचित रखना शायद प्रभुको अभिमत रहा हो।

* बाबा जयरामदासको लगभग २५ वर्ष हुए साकेतवास हो गया। श्रीअयोध्याजीके एक पुस्तकविक्रेताने उनके ही नामसे उनकी पुस्तकको सन् १९५८ में छपाया है। उसमें छपानेवाले ने न तो अपना नाम दिया

पं० श्रीकान्तशरणने भी इसी क्रमको अपनाया है †।

☞ आज तक यह सुननेमें नहीं आया कि इसका पाठ निष्फल हुआ हो। अतएव इस छोटी सी टीकामें चिरकालसे प्रचलित, संतसमाजमें सम्मानित क्रमको ही सुरक्षित रक्खा गया है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थोंसे सहायता ली गई है। पाठ विशेष रूपसे श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजी तथा बाबा जयरामदासजीकी प्रतियोंसे लिया गया है।

पाठकोंकी सुविधाके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारके जो पाठ--

है और न प्रेसका। इसका चतुर्थ आवृत्ति कहा है। अनधिकार चेष्टा यह की है कि इसमें पाठ-क्रम बदल दिया और नाम बाबा जयरामदासजीका ही रक्खा है।

† पं० श्रीकान्तशरणजी लिखते हैं—"मेरे विचारसे पद ३४ तक हो जानेपर पद ३६ से ४४ तककी व्यवस्था हुई है, इसपर पद ३५ में ग्रन्थकारने पीड़ा-निवृत्तिकी कृतज्ञता प्रकट की है। फिर पीछे प्रार्थना-सिद्धिकी व्यवस्थाका पद ३६ से ४४ तक वर्णन किया है कि पहले पद ३४ तक श्रीहनुमान्‌जीने ध्यान नहीं दिया। तब मैंने उनके अन्तर्यामी श्रीरामजीको अनुकूल किया। उसके पीछे काशी-क्षेत्रके अधिष्ठाता श्रीहनुमान्‌जीके शिवरूपसे भी पद ४३--४४में साथ-साथ प्रार्थना की। तब श्रीहनुमान्‌जीने कृपा करके पीड़ाको निर्मूल किया है। कार्यसिद्धि के पीछे व्यवस्था कहनेकी यह रीति पुरानी है। महाभारतमें भीष्म-पितामहके शर-शय्यापर पड़नेके पीछे उनके युद्धकी व्यवस्था कही गई है। वैसेही द्रोणवधके पीछे पूछे जानेपर द्रोणयुद्धकी एवं कर्णवध हो जानेके पीछे पूछनेपर कर्णयुद्धकी बातें कही गई हैं। उसी प्रकार ग्रंथ-कारने पीड़ानिवृत्ति पद ३५ में ही कहकर उसकी अन्तरंग बातें पद ३६से ४४ तक कही है।" [प्रस्तावना पृष्ठ ८—९]।

पारायण प्रचलित हैं, यहाँ दिये जा रहे हैं। जिसको जो रुचे वह उसे ग्रहण करे।

पाठ-पारायणके विभिन्न प्रकारोंका विवरण इस प्रकार है।—

१ आदिसे अन्ततक उसी क्रमसे जैसा इस पुस्तकमें है।—(यह क्रम चिरकालसे प्रचलित और सन्त-सम्मत है)।

२ प्रारंभसे ('सिंधुतरन…' पद १से)'पाल्यो तेरे टूक …' पद ३४ तक, फिर 'रामगुलाम तुही…' पद ३६ से 'कहौं हनुमान सों…' पद ४४ तक और तब 'घेरि लियो रोगनि…' पद३५ को—इस प्रकार पाठ करे।*

३ 'रामगुलाम तुही…' पद ३६से पाठ प्रारंभकर 'कहौं हनुमान सों…' पद ४४ तक पाठ करके तब 'सिंधुतरन…' से 'घेरि लियो रोगनि…' पद ३५ तक पाठ करे। इस प्रकार पद ३५ पर पाठ समाप्त करे।

४ 'सिंधुतरन…' पद १ से 'पाल्यो तेरे टूक…' पद ३४ तक,

* 'मानस मयंक' के टीकाकार श्रीइन्द्रदेवनारायणसिंहजीके द्वारा प्रकाशित [लगभग सन् १९२५ के] 'हनुमान बाहुक' तथा श्रीपरमेश्वरीदयालजी, मुंसिफ, बक्सर,की छपाई हुई 'श्रीहनुमान बाहुक' का मत इस [उपर्युक्त २ के] पक्षमें है।—चिरकालसे प्रचलित उपर्युक्त पाठ १ में 'कहौं हनुमान सों…' अंतमें होनेसे किसी-किसीको यह भ्रम हो गया है कि बाहुक-स्तोत्रसे गोस्वामीजीका कुरोग दूर नहीं हुआ। पद ३५ को अंतमें रखनेसे शंकाका स्थान नहीं रह जाता। इस विचार से किसी-किसीने पाठ २ छपाया। परन्तु शंका करनेवालोंकी शंका तो मेरी समझमें इस पाठ परिवर्तनसे कदापि निवृत्त नहीं हो सकती। उपर्युक्त पाठ ४ के सम्बधमें भी यही कहा जायगा।

तत्पश्चात् 'कहाँ हनुमान सों...' पद ४४, फिर पद ३६ 'रामगुलाम तुही...' से 'पाँय पीर...' पद ३८ तक, तब 'बालपने सूधे मन...' पद ४० से सीतापति साहेब...' पद ४३ तक, तब 'बाहुक सुबाहु...' पद ३६ और 'घेरि लियो...' पद ३५—इस क्रमसे पाठ करे।—(वेदान्त भूषण पं० रामकुमारदासजीका मत)।

नोट—उपर्युक्त किसी भी प्रकारके साधारण पाठसे भयानक रोग शत्रु-संकट, प्रेतबाधायें आदि नष्ट हो जाती हैं। श्री पं० अखिलेश्वरदासजी (रामघाट, श्रीअयोध्याजी) लिखते हैं कि "कोई भी दुःख हो श्रीहनुमानबाहुकके पांच पाठ नित्य करनेसे बड़ा लाभ होता है। हमने स्वयं पीड़ितोंको पाठ कराकर लाभ देखा है। इसके साथ कोई और विधिकी आवश्कता नहीं। केवल पाठसे लाभ हो जाता है।"—('ईश्वरप्राप्ति' के 'श्रीहनुमान अंक' सं० २०१४ पृष्ठ १७ से)।

कोई-कोई ग्यारह पाठ नित्य बारह दिन तक करनेको कहते हैं। ग्यारह पाठ नित्य ग्यारह दिन तक करे—यह एक आवृत्ति हुई। जब तक कार्य सिद्ध न हो करता जाय।

संपुट पाठ के लिए मंत्र

प्रायः ग्रंथके प्रत्येक पदमें कुछ ऐसे शब्द आये हैं जो इस बातका संकेत करते हैं कि उस पदके अनुष्ठानसे कौन कार्य सिद्ध होता है। कुछका उल्लेख यहाँ किया जाता है। संपुटके लिये सभी पद मंत्र माने गये हैं।

पद सं०	संकेत	किस कार्यकी सिद्धि होगी
१	समन सकल संकट विकट	विकट सकट की निवृत्ति
२	संताप पाप नहि आवत निकट	पाप संताप का नाश
३	दीन दुख दवनको कौन०	दीनदु:ख दमन
६	लोकपाल नीको फिरि २ थिर०	उजड़ेको बसानेवाला
६	नाम कलि कामतरु	इच्छित फल प्राप्ति
१०	सेवक सहायक है साहसी०	सेवककी सहायता
१३	केसरीकिसोर बंदीछोरके निवाजे	बदीसे छुड़ानेवाला
१४	नाम लेत देत अर्थ धर्म०	चारों फलोंकी प्राप्ति
१५	बिगरी सँवारि०	बिगड़ी सुधार देंगे
१६	पाप ते साप ते ताप तिहूँ ते०	पाप-शाप-त्रिताप मोचन
२०	बाँह पीर बेगिही निवारिये	बाहुपीड़ानिवृत्ति
२७	कौन के सँकोच०	सँकोची कर्मभी करनेके लिए
३०	ढील तेरी बीर पीर तें पिराति	कार्यमें ढील न होनेके लिए
३१	कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाय	मारुतसुतप्रभाव प्रकटन
३२	जेते चेतन अचेत निकेत हैं	जगतमात्रकी दुष्टता निवृत्ति
३८	पांयपीर···दमानकसी दई है	सर्वांगकी पीड़ा तथा देव भूत कर्म काल ग्रहकी निवृत्ति
३६	रामनामजप जाग कियो चाहों	रामनामजपमें विघ्नविनाश

श्रीव्रजचन्द्रजी द्वारा सं० १६४५ में प्रकाशित 'हनुमान बाहुक'में वे लिखते हैं कि पद२४ 'महाबाधाका सुगमतासे निवारक है', पद २६ 'कर्म-काल-स्वभाव-गुणादिजनित-पीरमोचन है', पद २८ 'देव ग्रहजनित उपाधि निवारक है', पद ३३ 'श्री-हनुमान्जीको पूर्ण सावधान करनेको है', पद ३४ 'अपनेको सर्वोपायशून्य कहकर कार्यमे विलंब न करनेको है' और पद ३५

'कुरोग राड राक्षसनिके निवारण को है' ।

नोट--यद्यपि प्रत्येक पद भिन्न-भिन्न भावोंसे भरा हुआ है । तथापि इसके चवालीसों पदोंको एकत्र (अर्थात् पूरे ग्रन्थको) एक स्तोत्र माना गया है। संपूर्ण ग्रन्थका नाम 'हनुमान बाहुक' है। अतएव मनोरथकी सिद्धिके लिये पूरे ग्रन्थका ही पाठ करना होगा। ऊपर जो प्रत्येक पदके भाव दिये गये हैं वे केवल इस लिए कि अपनी कामनाकी सिद्धिवाले पदका संपुट देकर पाठ करनेसे कार्य शीघ्र सिद्ध होगा ।

—: संपुट पाठ :—

'हनुमान बाहुक' का साधारण पाठ ही सब कामनाओं-की सिद्धिके लिए पर्याप्त है । तथापि महात्माओंकी सम्मति है कि कठिन आकस्मिक आपत्तियोंमे संपुट पाठ करना उचित है। ग्रन्थके ही किसी एक पदका (जो अपनी अभिलषित कार्यकी सिद्धि वाला हो) संपुट देना होता है। संपुटका विधान यह है कि प्रथम श्रीहनुमान्जीका षोडशोपचार पूजन करे । फिर विनीत पूर्वक अपना अभिप्राय सुनाकर संकल्पपूर्वक पाठ प्रारंभ करे । अपने अभिलषित कार्यकी सिद्धिवाला पद (अर्थात् संपुट को) प्रथम पढ़े; फिर ग्रन्थका पद १ पढ़े, फिर संपुटवाले पदको पढ़े और तब ग्रन्थके पद २ को पढ़कर फिर संपुटवाला पद पढ़े, इत्यादि इस क्रमसे पद ४४ तक प्रत्येक पद-को संपुटित करता जाय (पद ४४ के अन्तमें भी संपुटवाला पद पढ़ा जायगा)।—यह संपूर्ण पाठ एक आवृत्ति कही जायगी । --एक बैठकमें जितनी भी आवृत्ति की-जायँगी उनके लिए पूजन प्रथम ही वाला रहेगा ।

(क) चार आवृत्ति प्रतिदिन करना हो तो एक मासका संकल्प करे । यदि उतने समयमें मनोरथ सिद्ध न हो तो घबड़ाये

नहीं, दो या तीन हद चार मास तक लगातार पाठ करना चाहिये। कार्य अवश्य सफल होगा।

(ख) केवल २२ दिनके संपुट पाठ की विधि—

प्रथम दिन संपूर्ण संपुटित पाठकी एक आवृत्ति, दूसरे दिन दो आवृत्ति, तीसरे दिन तीन आवृत्ति,—इस प्रकार क्रमशः एक आवृत्ति प्रति दिन बढ़ाते हुए ११ दिन पाठ करे। फिर बारहवें दिनसे इसी क्रमको उलटकर ११ दिन तक पाठ करे, अर्थात् बारहवें दिन ११ पाठ करे, तेरहवें दिन १०, चौदहवें दिन ६,—इस प्रकार क्रमशः एक पाठ नित्य घटाते हुये बाईसवें दिन एक पाठ करके अनुष्ठान समाप्त करे। प्रायः २२ दिनके अनुष्ठानसे काय सिद्ध होजाता है।।—विशेष नोट ४ में देखिये।

नोट—१ अनुष्ठान करनेवालेको कमसे कम जब तक अनुष्ठान पूरा न हो जाय ब्रह्मचर्य और सदाचारका पालन आवश्यक है। पाठ सावधानतापूर्वक करे, शुद्ध करे, घुड़दौड़ न करे। प्रेमसे करे।

२ पाठारंभके पहले तथा पाठके अन्तमें श्रीहनुमान्‌जीका कोई मंत्र, श्लोक या प्रभावसूचक चौपाई आदि भी जप लिया करे तो और भी उत्तम है। जैसे कि—'ॐ हं हनुमते नमः।', 'ॐ हनुमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्र महाबल। अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोस्तुते ।।', 'रुद्रावतार संसारदुःखभारापहारक। लोल लाङ्गूलपातेन ममारातिं निपातय ।।'. 'मंगल मूरति मारुतनंदन। सकल अमंगलमूलनिकंदन।। पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना ।। कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहि होइ तात तुम्ह पाहीं ।।', 'जाके गति है हनुमान की। ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की।।

अघटित-घटन सुघट-बिघटन ऐसी बिरुदावलि नहि आन की।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचनि मूरति मोदनिधान की ॥ तापर सानुकूल गिरिजा हर लषनु रामु अरु जानकी। तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि खानि सकल कल्यान की ॥'—

३—श्रीहनुमान्‌जीके मंदिरमें पाठ करे, यह विशेष उत्तम होगा।

नोट ४— ११ दिन अथवा लोम-प्रतिलोम-विधिसे २२ दिन पाठ का विशेष विधानः—

पं० हनुमानदत्त मिश्र वे० र० वै० व्या० (विद्याकुंड, श्रीअयोध्याजी) का मत है कि कामनाके पद्योंसे संपुटित पाठ करनेसे असाध्य कार्य भी ग्यारह अथवा लोम-प्रतिलोम (अनुलोम-विलोम) विधिसे २२ दिनमें अवश्य सिद्ध हो जाता है। परन्तु उसमें कुछ विधान आवश्यक है। वह विधि यह है—प्रथम 'श्रीवीर भगवान यंत्रस्वरूप' (यन्त्रराज) की प्राण-प्रतिष्ठा करके या किसी कर्मकाण्डी पंडितद्वारा कराके उनका षोडशोपचार पूजन करे, फिर कामना-सिद्धिके लिये संकल्प करे,—[प्राणप्रतिष्ठा, पूजन, संकल्प आदि की विधि हम आगे दे रहे हैं], तब पाठ प्रारंभ करे।

अनुष्ठानके दिनोंमें—ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्यका पालन। सात्विक आहार (अन्न, मिष्ठान्न आदि शुद्ध और सात्विक हों)। एकाहार या फलाहार करे। भूमिपर अथवा तखत (काठकी चौकी) पर शुद्ध कंबल वस्त्र बिछाकर शयन करे। श्रीसीताराम-जीका प्रसाद श्रीवीर भगवानको भोग लगावे और उसे स्वयं पावे।

श्री वीर भगवान् यन्त्रस्वरूप
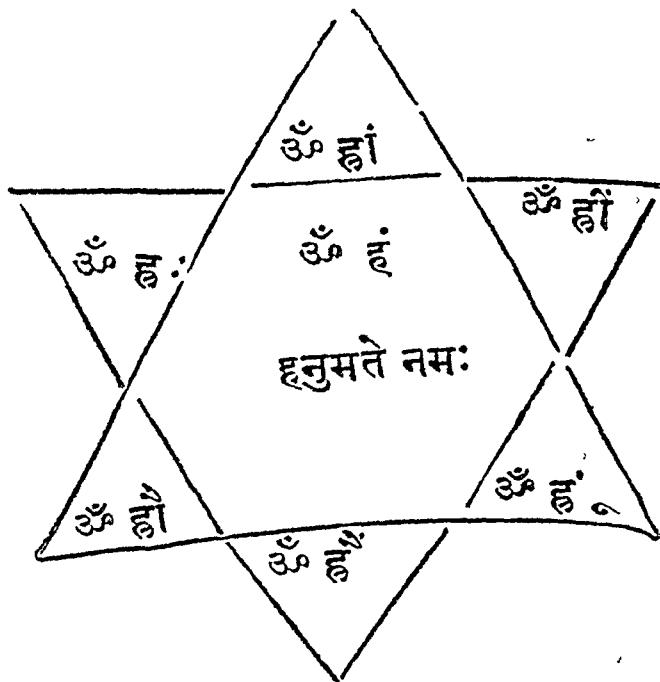
प्राणप्रतिष्ठा विधि

इस यन्त्रराजको स्वर्ण या चाँदी या ताम्रपत्रपर निर्माण कराके (अर्थात् खुदवाकर) सिंहासन या लाल वस्त्रपर स्थापित करके श्री सरयू या गंगाजलसे कुश द्वारा मार्जन करे। फिर श्रीयन्त्रराजके मध्यमे दाहिने हाथका अँगूठा धरकर प्रतिष्ठाका यह मन्त्र पढ़े—"ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं पं सं हं सः अस्य प्राण इह प्राणाः पुनः ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः अस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ् मनस्त्वक् चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राण पाणि पाद पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ ॐ मनो जूतिजुषता माज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञ-मिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमन्दधातु विश्वे देवा स इहमादयां-मो प्रतिष्ठ प्रधान पीठादि यन्त्ररूप श्रीहनुमान् देवता सुप्रतिष्ठितो

वरदो भवतु ॥ इति प्राण प्रतिष्ठा ॥

पूजन विधि—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, चंदन पुष्प दध्वक्षत रोरी धूप, दीप, नैवेद्य फल, आचमन, ताम्बूल पुंगीफल, दक्षिणा, आरती, प्रदक्षिणा, स्तुति और प्रणाम । इति पूजनम् ॥

नोट १—नैवेद्यमे मोदक अथवा मालपूआके अभावमे पंचमेवा समर्पण करे ।

२—घीके अभावमे तिलका तेल होना चाहिये। यदि यह भी न मिले तो पाठके समय धूप बराबर देता रहे । [धूपबत्ती वाजारी का प्रयोग न करे । बहुत कारखानोंमे उसमें लेई लगाई जाती है] गुग्गुल की धूप दो ।—गुग्गुल, तुलसीकाष्ठका चूर्ण (बुरादा), गोघृत, तिल, गुड़ को मिलाकर धूप बना ले । इस धूपसे कार्य शीघ्र सिद्ध होता है ।

३—कामना-सिद्धिका संकल्प करके श्रीराममंत्रका जाप करके तब अनुष्ठान प्रारंभ किया करे, अन्यथा वह निष्फल हो जाता है ।

४—अनुष्ठान समाप्त होनेपर 'ॐ हं हनुमते नमः' इस मंत्रसे गोदुग्धमे बनी हुई हविष्यान्नसे १०८ आहुतियाँ देनी चाहिये ।

५—यदि यन्त्रराज उपर्युक्त रीतिसे बनवाने आदिमे कठिनाई हो तो नित्य एक ताम्रपत्र या भोजपत्रपर अनारकी कलम (लेखनी) द्वारा लाल चंदनसे यन्त्र बनाकर मंत्रों द्वारा श्रीवीर भगवानका आवाहन कर लिया करे । प्रति दिन पाठ समाप्तिपर उसे विसर्जन करना होगा ।

नोट—जो भी विधान मुझे मालूम हुये मैंने लिख दिये । जिसकी जिस विधानमें श्रद्धा हो और जो वहकर या करा सके

उसे वह काममें लाये हमारा तो विश्वास है कि प्रेमसे साधारण पाठ करनेसे भी करुणानिधान श्रीअंजनीनन्दनजी अवश्य कृपा करते हैं। और भी अनुष्ठान आगे देकर हम इस प्रसंगको समाप्त करते हैं।

श्री 'हनुमान बाहुक' स्तोत्र-मंत्र सिद्धि

दशहरा (आश्विन शुक्ल १० विजय दशमी) से अनुष्ठान प्रारंभ होगा और श्रीहनुमान्‌जीके जन्मदिवस तक इस क्रमसे चलेगा कि—दशहराको एक पाठ करे, एकादशीको दो पाठ, द्वादशीको तीन पाठ—इस भाँति जन्म दिन तक एक पाठ प्रति दिन बढ़ाता जाय (कुल एक्कीस दिन होते हैं)। फिर अमावस्यासे एक पाठ घटता जायगा। जब एक पाठ पर पहुँचेगा, तब अनुष्ठान पूरा हो गया।

—इस अनुष्ठानके निर्विघ्न पूरा हो जानेपर अनुष्ठानकर्ताको श्री 'हनुमान बाहुक' स्तोत्र सिद्ध हो जाता है। वह दूसरोंके क्लेशोंको केवल एक या दो पदोंको जपकर दूर कर सकता है, संपूर्ण बाहुकके पाठकी आवश्यकता नहीं रह जाती। किस पदके जपसे कौन कार्य होगा यह हम फलश्रुति नामसे नीचे लिख रहे हैं।

अनुष्ठान विधिः—प्रथम श्रीहनुमान्‌जीका षोडशोपचार या पंचोपचार पूजन करे। लाल फूल गुड़हल चढ़ावे। लड्डू भोग लगाये (शुद्ध घी मिले तो उसीके लड्डूका भोग लगावे, नहीं तो केला फलका या पंचमेवा आदिका भोग लगावे)। पाठके समय शुद्ध घृत या तिलके तेलका दीपक जलता रहे। गुग्गुल की धूप बराबर देता रहे। लड्डू फल और फूल जितने प्रथम दिन चढ़ाये जावे, उतनेही प्रतिदिन

चढ़ने चाहिएँ, न्यून या अधिक न हों। ब्रह्मचर्य और सदाचार का पालन करना होगा।

फल श्रुति

पद १ और २ से भूत बाधा। ३ से आगन्तुक दुःख।
४ से शत्रुभय। ५-६ से ग्राम उजड़।
७ से मूर्छा दूर हो। ८ से अमृत प्राप्ति।
९ से बंदी छूटे। १० से अखाड़ा जीते।
११ से दरिद्रता दूर हो। १२ से वशीकरण।
१३ से शत्रु वश हो। १४ से विजय।
१५-१६ से गई वस्तु प्राप्त हो। १७ से उच्चाटन।
१८ से मृत्यु न हो। १९ से रक्षा हो।
२० से चोर पकड़े। २१ से सर्प झाड़े।
२२ से शान्ति। २३ से भूत शान्ति।
२४ से टोना छूटे। २५ से पेट वायु झाड़े।
२६ से बिच्छू झाड़े। २७ से नाश।
२८ से टोना लौटाना। २९ से विपत्ति नाश।
३० से बाधा नाश। ३१ से देव वश।
३२ से प्रेत विजय। ३३ से राज्य प्राप्ति।
३४ से बंधन। ३५ से महामारी शान्ति।
३६ से शान्ति। ३७ से राज शासन।
३८ से चोरी गई वस्तु प्राप्ति। ३९ से कलंक दूर।
४० से बुद्धि शुद्धि। ४१ से बिगड़ा प्रयोग सुधारे
४२ से ऋण। ४३ से शान्ति।
पद ४४ से पाताल शान्ति।

—यह अनुष्ठान चित्रकूटमें एक सन्त करते थे, महन्त श्रीराममनोहरशरण (श्रीसरयूकुंज, ऋणमोचनघाट, श्रीअयोध्याजी) से मुझे प्राप्त हुआ।

ब्रह्मपिशाचपलायनानुष्ठान

बाबा जयरामदासजी लिखते हैं कि श्रीहनुमानबाहुक स्तोत्रके ग्यारह पाठ नित्य ग्यारह दिन तक नीचे लिखी बिधिसे करनेसे ब्रह्मपिशाच भाग जाते हैं।

विधि—मौन, फलाहार, भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, नवीन वस्त्र, दो धोती, रेशमी चादर एक, गमछा (अँगौछा, साफी) दो, लँगोट दो, खड़ाऊँ, आसनी ऊनी, पंचपात्र एक, आचमनी एक, भोगार्थ नवीन थाली, लोटा, गिलास, कटोरा, सपट्ट सदीप धातु कलश। अन्यं वन्यं समादाय हनुमन्तं समर्पयेत्। अंतमें ११ ब्राह्मण भोजन। भोजनमें मोदक अवश्य हो। प्रत्येक ब्राह्मण को दक्षिणा सपादशतसे कम न हो चाहे संख्यामें १२५ पैसे ही हों, जो हो उसकी संख्या १२५ हो। अधिक चाहे हो जाय।"

———

धन्यवाद

स्वाध्यायके लिए श्री 'हनुमान बाहुक' का पाठ प्राचीन छपी हुई पुस्तकोंसे संशोधनकर कुछ कठिन शब्दोंके अर्थमात्र ही मैंने लिखे थे। श्रीमती मीरा देवीको उसमें आये हुये रूपक समझानेके लिये फिर कुछ सूक्ष्म नोट्स (टिप्पणियाँ) भी लिख दिये थे। उसीको उसने साफ़ लिखकर दिखाया। मैंने उसे यत्र-तत्र ठीक कर दिया। श्रीभगवतीप्रसादजी, ऐडवोकेट, गोरखपुर के उत्साहसे मीरादेवीने शब्दार्थ, पद्यार्थ और टिप्पणियाँ लिखकर उसे प्रेसके योग्य तैयार कर दिया। तब मैंने भूमिका स्वयं लिख दी। इस प्रकार पूरी टीका संपन्न होगई।

श्रीभगवतीप्रसादजी तथा अन्य प्रेमी गोरखपुर तथा लखनऊमें इसके शीघ्र छपनेका प्रबंध न कर सके।

श्रीअजनीनन्दनजी बाल ब्रह्मचारी और परम वैराग्यवान् हैं। इसीसे कदाचित् किसी गृहस्थके प्रेसमें इसका छपकर प्रकाशित होना उनके मनोनुकूल न रहा हो जिससे श्रीअयोध्याजीके भी अन्य प्रेसोंमें इसके छपनेका प्रबन्ध न हुआ। 'विरक्त प्रेस' के मालिक परम विरक्त ब्रह्मचारी श्रीवासुदेवाचार्यजी हैं, उनसे पूछते ही, काम बहुत होने पर भी, उन्होंने सहर्ष इसे छाप देना स्वीकार कर लिया। उनको मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

श्रीभगवतीप्रसादजी तथा श्रीमती मीरा देवी भी धन्यवाद योग्य हैं कि जिनके उत्साहसे यह ग्रन्थ रच गया।

मूल्य

ग्रन्थ कमाने के विचारसे मैंने नहीं लिखे। श्रीगुरु-भगवन्-द्वारा प्राप्त सेवा समझकर ही लिखे गये। सेवा सफल हो इसी विचारसे 'मानस-पीयूष' का सर्वाधिकार गीता प्रेसको दान कर दिया गया।

श्री 'हनुमान बाहुक' की भी इस टीकाका मूल्य हमने केवल १.४० (लागतसे कुछ ही अधिक) रक्खा है। कोई इसको भी एक साथ पाँच हजार प्रतियाँ छपाकर ।॥) में बेचे तो मैं इसका भी सर्वाधिकार दान कर दूँगा। बहुत लोग पाठके लिए केवल मूल और पद्यार्थ ही चाहते हैं। अतः कुछ पुस्तकें वैसी भी छपाई जा रही हैं। लगभग ६४ पृष्ठकी पुस्तक होगी। मूल्य केवल ४० न० प० होगा।

(i) पदानुक्रमणिका

(ii) संकेताक्षरोंका विवरण

संकेत	विवरण
अ०	अध्याय
अ०रा०	अध्यात्म रामायण
आ०रा०	आनन्द रामायण
आञ्जनेय	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' संकीर्तन कार्यालय, मेरठ, से प्रकाशित सन् १९३८
कंब रामायण	तमिल भाषाका हिंदी अनुवाद
क०	कवितावली
गी०	गीतावली
च०	तुलसी रचनावली श्री-सीतारामप्रेस, काशी, १९९६ वि०
छ०	श्री लाला छक्कनलाल-की प्रति
ज०	बाबा जयरामदासजी-का 'हनुमान बाहुक स्तोत्र' द्वितीय संस्करण सन् १९३५
तु० ग्रं०	काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाली तुलसी ग्रन्थावली दूसरा संस्करण सं० २००४
दो०	दोहावली
द्वि०	पं० रामगुलाम द्विवेदी
ना० प्र०	तुलसी ग्रन्थावली
पं०	पं० श्रीरामवल्लभा-शरण द्वारा संशोधित एकादश ग्रन्थ
प०पु०पा०	पद्मपुराण पाताल खंड
भा०	श्रीमद्भागवत
भा० वन०	महाभारत वनपर्व
भा० भीष्म	महाभारत भीष्मपर्व
भा० शल्य	महाभारत शल्यपर्व
मानस	श्रीरामचरितमानस
मु०	श्रीपरमेश्वरीदयाल मुन्सिफ कृत अँगरेजी, हिंदी टीका सहित 'श्रीहनुमान बाहुक'
रा०	रामायणी श्रीराम-सुन्दरदासजी श्रीअयोध्याजी। रामायण।
व०	गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित पं० महावीरप्रसाद मालवीय कृत टीका-सहित 'हनुमानबाहुक'। सं० २०२२।

वा०	वाल्मीकीय रामायण
वि०	विनय पत्रिका
वि० पी०	विनय-पीयूष
वै०	श्रीवैजनाथजीका 'हनुमान बाहुक भूषण' तिलक
श०	श्री श्रीकान्तशरणजीका 'श्रीहनुमान् बाहुक' सिद्धांत तिलक, सन् १६५०
श० सा०	नागरीप्रचारिणीसभाका हिन्दी शब्द सागर, प्रथम सस्करण, सन् १६१४
सं०	संस्कृत, संहिता, संस्करण, विक्रमी सम्वत्
ह०	श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादकृत टीका
ह० न०	हनुमन्नाटक, व्रजरत्न-भट्टाचार्य कृत टीका सहित, सं० १६८१ पंचमावृत्ति।
हनुमच्चरित	विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्दु', रामकार्यालय, पो० लंका, बनारस सिटी, सं० १६८७

नोट—(१) रामायणोंके बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका (युद्ध) और उत्तर काण्डोंके लिए क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६ और ७ सूचक अंक दिये गये हैं।

(२) रामचरितमानसके उद्धरणोंमें प्रायः केवल कांड और दोहे के अंक ('मानस-पीयूप' के मूल पाठानुसार) दिये गये हैं जैसे, ७।१३ = उत्तरकांड दोहा १३ अथवा दोहा १३ में आई हुई अर्धालियाँ।
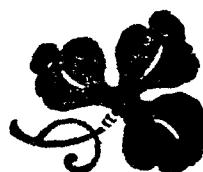
* श्रीसुदर्शनसंहितोक्तं श्रीहनुमत्स्तोत्रनिरूपणम् *

ॐ आपन्नाखिललोकार्तिहारिणे श्रीहनूमते ।
अकस्मादागतोत्पातनाशनाय नमोऽस्तु ते ॥१॥
आधिव्याधिमहामारीग्रहपीडादिहारिणे ।
प्राणापहंत्रे दैत्यानां रामप्राणात्मने नमः ॥२॥
संसारसागरावर्तगतोर्निर्भ्रान्तचेतसाम् ।
शरणागतमर्त्यानां शरण्याय नमोऽस्तु ते ॥३॥
राजद्वारे बिलद्वारे प्रवेशे भूतसङ्कुले ।
गजसिंहमहाव्याघ्रचौरभीषणकानने ॥
प्रदोषे च प्रवासे च ये स्मरन्त्यञ्जनीसुतम् ।
अर्थसिद्धियशः कान्ती प्रप्नुवन्ति न संशयः ॥४,५॥
कारागृहे प्रयाणे च संग्रामे देश विप्लवे ।
ये स्मरन्ति हनूमन्तं तेषां नास्ति विपच्चयः ॥६॥
वज्रदेहाय कालाग्निरुद्रायामिततेजसे ।
दैत्यदुष्टमहादर्पदलनाय महात्मने ॥
ब्रह्मास्त्रस्तम्भिने तुभ्यं नमः श्रीरुद्रमूर्तये ॥७॥
सीतावियुक्तश्रीरामशोकदुःखभयापह ।
तापत्रयोपसंहारिन आञ्जनेय नमोऽस्तु ते ॥८॥
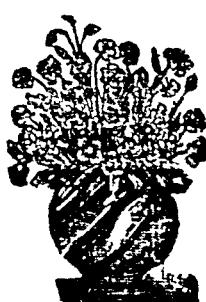
ॐ नमो भगवते मंगलमर्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय रामदूताय शरणागतवत्सलाय जनरक्षकाय सर्वविघ्नविनाशकाय श्रीसीतारामपदप्रेमपराभक्तिप्रदाय श्रीहनुमते ।

श्रीहनुमते नमो नमः

जय जय कपि श्रीरामप्रिय धन्य धन्य हनुमन्त ।

नमो नमो श्रीमारुती वलिहारी वलवन्त ॥

सिया दुलारे पवनसुत मम गुरु अञ्जनिपूत ।

सतसङ्गति निज चरण रति देहु सीयपिय दूत ॥

ॐ नमो भगवत्या अस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै । ॐ नमो भगवते मंगलमूर्त्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय रामदूताय शरणागत-वत्सलाय सर्वविघ्नविनाशकाय क्षमामन्दिराय श्रीसीता-रामपदप्रेमपराभक्तिप्रदाय सर्वसंकटनिवारणाय श्रीहनुमते । परमाचार्याय श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासाय नमः

ॐ मंगलाचरण ॐ

"वीताखिलविषयेच्छं जातानन्दाश्रुपुलकमत्यच्छम् ।
सीतापतिदूताद्यं वातात्मजमद्य भावये हृद्यम् ॥"
"कदा सीताशोकत्रिशिखजलदं चाञ्जनिसुतम् ।
चिरञ्जीवं लोके भजकजनसंरक्षणकरम् ॥
अये वायोः सूनो रघुवरपदाम्भोजमधुप ।
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥"

प्रेम बुद्धि विज्ञान बल सदाचार हम में भरें ।
माया पीड़ा विघ्न से आञ्जनेय रक्षा करें ॥

श्री 'हनुमान-बाहुक'

(पीयूष-वर्षिणी टीका सहित)

छप्पय

सिंधु-तरन सिय-सोच[1]-हरन रबिबाल-बरन-तनु ।
भुज-बिसाल, मूरति कराल कालहु को[2] काल जनु ॥
गहन-दहन, निरदहन लंक निःसंक, बंक-भुव ।

---

१ सोक-वै० । २ के-श०

जातुधान बलवान मान-मद-दवन पवनसुव ॥
कह[२] तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट ।
गुन गनत नमत सुमिरत जपत समन सकल संकट बिकट।१।

शब्दार्थ—रबिबाल बरन=बाल रवि वर्ण=उदयकालीन प्रातःकालके सूर्यके (समान लाल) रंगका । मूरति (मूर्ति)= स्वरूप, आकृति, विग्रह । कराल=भयंकर, भयावनी । जनु=मानो । गहन=वन या काननमें गुप्त स्थान (यहाँ अशोकवन जो अत्यन्त गुप्त स्थान था)। दहन=जलाने वा तहस-नहस करनेवाले । निर्दहन=भलीभाँति विशेषरूपसे जलानेवाले, निःशेष जलानेवाले । बंक=टेढ़ी, तिर्छी, विकट । भुव=भ्रू, भृकुटि, भौंह । जातुधान (यातुधान)=राक्षस । मान=प्रतिष्ठाकी चाह आत्माभिमान । मद=अपने कर्म बल ऐश्वर्य आदिका अभिमान होनेसे गर्व, जिससे अपने सामने औरोंको कुछ न समझकर उनकी अवहेलना की-जाती है । दवन=नाश करनेवाले । सुव=सुवन=पुत्र । सुलभ=सुगम-साध्य, सुगमतासे प्राप्त होनेवाले। हित=लिये; हितार्थ; भलाई करनेके लिये । संतत=सदा, निरंतर । गणना=हृदयमें लाना; महत्व समझना ।=कथन करना (ह०)। शमन=नाश करनेवाले विकट=भयंकर; बहुत कड़े वा कठिन ।

पद्यार्थ—समुद्रको लाँघकर पार करजानेवाले, श्रीसीताजीके शोचको हरनेवाले जिनका शरीर बालरविके वर्णका अर्थात् लाल है, भुजायें लंबी हैं, मूर्ति कराल है मानों कालके भी काल हैं, अशोकवनको तहस-नहस कर डालनेवाले, लंकाको भली भाँति निःशंक होकर जलानेवाले, निःशंक और विकट टेढ़ी भौंहों वाले, बलवान राक्षसोंके मान और मदका नाश करने-

[२] कहि—ह०

वाले (जो) पवनदेवके पुत्र (हैं), तुलसीदासजी कहते हैं (कि वे) सेवा करनेसे सुगमतासे प्राप्त हो जाते हैं, उनकी सेवा सुगम है सेवकके हितके लिये वे सदा उसके निकट रहते हैं। गुण गणन करने, प्रणाम करने, स्मरण करने एवं (नाम) जपनेसे कठिन-से-कठिन समस्त संकटों (क्लेशों) का नाश करनेवाले हैं।'

टिप्पणी—१ किसी भी देवतासे जब किसी मनोरथकी सिद्धि अभिलषित होती है, तब प्रथम उसमें उस मनोरथको पूर्ण करनेके लिये जो गुण अपेक्षित हैं, वे उसमें दिखाकर तब अपना मनोरथ प्रकट किया जाता है।—यहां उसी रीत्यनुसार प्रथम १३ पदोंमें गुण गाया है। १४वें में हनुमान्‌जीको सीधे संबोधितकर अपना नाता बताकर अपना दुःख निवेदन किया है।

२—पद २३ मे रोगको सिंधुकी उपमा दी है—'मुद मरकट रोग-वारिनिधि हेरि हारे' और अंतमे पद ४३ मे इस रोगसिंधु को गोपद समान सहजही तर जाने योग्य कर देनेकी प्रार्थनाभी की है—'रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै।', अतएव ग्रन्थको 'सिंधु तरन' (सुन्दरकांडके इस चरित्र) से प्रारम्भ किया।

३—यहां उत्तरोत्तर उत्कृष्ट पुरुपार्थोका वर्णन है—(१) समुद्रलंघनकी दुष्करता (४०० कोश पाट था, बीचमें सुरसा छायाग्रहणी सिंहिका और अन्तमे लंकिनी द्वारा विघ्न)। (२) श्रीसीताजीको रावणने ऐसे गुप्त कुंजमें रक्खा था कि उनका पता लगाना कठिन था। विभीषणजीकी बताई युक्तिसे ये वहाँ पहुँचे। (३) 'सिय सोच हरन' जिस प्रकार किया, यह भुज-बिसाल' से लेकर 'मान-मद-दवन पवनसुव' तक कहा।—यह सबसे दुष्कर कार्य है।—रावण, मेघनाद और अकंपन आदिके रहते उनकी आँखोंके सामने सारी लंकाको जला डाला। प्रथम

'भुज विशाल' से अशोक वन उजाड़ा, रक्षकोंको मारा, अक्ष-कुमारको मारा, इत्यादि। पूँछमें आग लगाई-जानेपर फिर कराल स्वरूप धारणकर, क्रोधमें भरकर (भौंह टेढ़ी करके) लंका जलाई।

४—'मूरति कराल कालहु को काल जनु'।—काल बड़ा कराल है, यथा 'काल सदा दुरतिक्रम भारी॥ तुम्हहि न व्यापत काल, अति कराल कारन कवन॥ ७। ९४।' कालके भी काल कहकर कालसे अधिक विकराल स्वरूप जनाया। रावणने स्वयं इनकी निपट निःशंकता और यह करालता स्वीकार की है।-'देखउँ अति असंक सठ तोही।५।२१।२।','कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो।क०५ ९।'

५—शोकहरणके प्रसंगसे यहां 'रविबाल वर्ण' की उपमा दी, क्योंकि प्रातःकालके सूर्य सुखदायक हैं, यथा 'सुखद भानु भोर को' (पद ६)। श्रीजानकीजीके भय (शोक) रूप अंधकारको हरण करनेमें सूर्यके समान कहे भी गए हैं।-'सीतातंक-महान्धकारहरण प्रद्योतनोऽयं हरिः। ह० न० १३। ३३।' (यह श्रीराम-सुग्रीवादिके वाक्य हैं)।

६—'सोच हरन'—वियोगका सोच तो था ही, सबसे बड़ा सोच यह था कि नीच राक्षसके हाथ मरण होगा —'सीता कर मन सोच। मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच।५। ११।' यह शोच दूर किया--'जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरज दीन्ह।५।२७।'

७—'गहन दहन निरदहन लंक निःसंक'।—अशोकवन रावणको, उसके परम प्रिय पुत्र इन्द्रजीतकी कौन कहे, स्वयं अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। उसकी रक्षाके लिये वह कुछ उठा नहीं रक्खेगा और दुर्धर्ष लंका उसकी राजधानी ही थी तथा महावीर योद्धाओं द्वारा रक्षित थी, यह जानकर भी

वे निर्भय थे। वे बराबर उच्च स्वरसे घोषणा करते थे—'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः। हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥ न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्। शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥ अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्। समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥' (वा० ५।४२।३३-३६)—'अत्यंत बलवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणजीकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी जय हो। मैं अनायासही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलेन्द्र श्रीरामका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान है। मैं पवनपुत्र तथा शत्रु सेनाका संहार करनेवाला हूँ। हजारों वृक्षों और पत्थरोंसे प्रहार करनेपर सहस्रों रावण मिलकर भी मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लंकापुरीको तहस-नहसकर मिथिलेशनन्दिनीको प्रणाम करके सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा।' स्वयं रावणके समस्त खास महलोंमे आग लगा-लगाकर वे प्रलयकालके मेघके समान गर्जना करते थे।—'ननाद हनुमान् वीरो युगान्तजलदो यथा। वा० ५।५४ २०।' घोषणा करके लल कार-ललकारकर उन्होंने सुभटोंको मारा, रावणके पुत्रको मार डाला और रावण-मेघनाद-अकंपन आदिके देखते-देखते लंकापुरीको भस्मसात कर दिया; कोई कुछ न कर सका। यह 'मानमद' का मर्दन है। ‡ मंदोदरी और प्रहस्तने रावण-मेघनाद-आदिसे यही प्रमाण देकर कहा था—'कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा' (६।३५।४-६)। 'छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगर कस

‡ देवताओं और असुरोंको भय देनेवाला हूँ यह प्रतिष्ठा मुझे प्राप्त है.—सुरासुरभयप्राप्तप्रतिष्ठैर्भुजैः। ह० ना० ११।२१।' कैलासका मंथन करनेकी कीर्ति मेरी प्रसिद्ध है—'शंभुशैलमथन-

न धरि खाहू। ६।६।३।' 'तुलसी बढ़ाई बादि साल तें विसाल बाहैं, याही बल बालिसो बिरोध रघुनाथ सों। क० ५।१३।' (यह लंकादाहके समय मंदोदरीने मेघनाद, महोदर, अतिकाय और अकंपनसे कहा है) ।

८—'जातुधान मान-मददवन'से जनाया कि इस स्वरूपसे रावणादिके मान मदको दलन किया था। आगे 'सेवत सुलभ सेवक हित...' कहकर जनाया कि शत्रुओंके लिये वे भयदायक हैं और अपने भक्तोंका हित करनेके लिए, इस रूपसे सदा उनके निकट रहते हैं।—'अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः। वा० ७।३६।२३।' (यह ब्रह्मदत्त वरदान है)

६—'पवनसुव' इति। तपस्यामें संलग्न माता श्रीअञ्जना देवीने महर्षि मतङ्गजीके पूछनेपर कहा है कि 'केशरी नामक श्रेष्ठ वानरने मेरे पितासे मेरे लिये याचना की। तब पिताने मुझे उनकी सेवामें समर्पित कर दिया। पतिदेवके साथ सुख-पूर्वक विहार करते हुए मुझे बहुत समय व्यतीत हो गया, परन्तु अबतक मुझे कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। मैंने किष्किंधा महापुरी मे अनेक प्रकारके व्रत भी किये तथापि पुत्र न पाकर मुझे दुःख हुआ। अतः अब मैं तपस्यामें तत्पर हुई हूँ। विप्रवर! मुझे बताइए कि किस प्रकार मुझे त्रिभुवनमें प्रसिद्ध पुत्र प्राप्त होगा। मैं आपके आगे मस्तक झुकाकर यही माँगती हूँ।' तब महर्षिजी ने उन्हें सुवर्णमुखरी नदीके उत्तर भागमें वृषभाचल (वेङ्कटाचल) पर्वतके शिखर पर स्थित स्वामिपुष्करिणी तीर्थ' में जाकर

प्रख्यात वीर्यः। ह० ना० ८।३६।' लोकमात्रको रुलानेवाला होने से मैंने 'रावण' नाम पाया है,—'देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले। एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम्। वा० ७।१६।३८।' (शंकरजी कहते हैं कि देवता, मनुष्य आदि सभी लोकोंको रुलानेवाले तुझको रावण कहेंगे। इत्यादि 'मान' था।

विधिपूर्वक स्नान करनेके बाद वाराह स्वामी तथा भगवान् वेङ्कटेश्वरको प्रणाम करके वहांसे आकाशगंगा तीर्थमें जाकर स्नान और उसके जलको पान करके तीर्थके सम्मुख खड़ी होकर वायुदेवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे तपस्या करनेका आदेश दिया और कहा कि ऐसा करनेसे तुम्हें देवता, राक्षस, ब्राह्मण, मनुष्य तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।

श्रीअञ्जना देवीने महर्षिको बार-बार प्रणाम किया और पतिको साथ लेकर वह शीघ्र ही वेङ्कटाचल पर्वतपर गयी, स्वामि-पुष्करिणीमें स्नानकर वाराहस्वामी और भगवान् वेङ्कटेश्वरको प्रणामकर आकाशगंगातटपर गयी। उसमें नहाकर जलको पिया और सम्मुख खड़ी होकर प्राणस्वरूप वायुदेवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करने लगी। तब सूर्यदेवके मेषराशिपर रहते समय चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथिको वायुदेवने प्रकट होकर वर मॉगनेको कहा। सती अञ्जनाने कहा—'महाभाग! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये।' वायुदेवने कहा—'सुमुखि! मैं ही तुम्हारा पुत्र होऊँगा और तुम्हारे नामको विश्वमें विख्यात कर दूँगा।'—(स्कन्द पुराण वैष्णवखंड-भूमिवाराह खंड अ॰ ३६। वेङ्कटाचल माहात्म्य)।वा० ७।३५।२० में महर्षि अगस्त्यने बताया है कि वानरराज केसरीकी प्रियतमा पत्नी अञ्जनाके गर्भसे वायु-देवने एक उत्तम पुत्रको (श्रीहनुमानजीको) जन्म दिया।

वा० ४।६६ में श्रीजाम्बवान्‌जीने श्रीहनुमान्‌जीसे उनके जन्मका वृत्तान्त कहा है। वह यह है—'पुञ्जिकस्थला नामक विख्यात अप्सरा शापवश कपियोनिमे अवतीर्ण हुई। वह कुञ्जरकी पुत्री हुई। वानरराज केसरीकी पत्नी हुई। रूप और यौवनसे सुशोभित वह अंजना एक दिन मानवी शरीर धारणकर पीतरंगको रेशमी साड़ी पहने हुए एक पर्वत-शिखरपर खड़ी थी। वायु-देवता उसके अंगोंको देखकर कामसे मोहित होगये। मन अंजना

में ही लग गया। उन्होंने उस अनिन्द्य सुन्दरीको अपने दोनों विशाल भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया। अंजना घबड़ाकर बोली—'एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति। श्लो० १६।' कौन मेरे पातिव्रत्यका नाश करना चाहता है? पवनदेवने उत्तर दिया—'सुश्रोणि! मैं तुम्हारे पातिव्रत्यका नाश नहीं कर रहा हूं। मैंने अव्यक्तरूपसे तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसी संकल्पके द्वारा तुम्हारे साथ समागम किया है। इससे तुम्हें बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्राप्त होगा।'''(श्लो० ८–२०)।

हनुमच्चरित्रमें जन्मकी कथा इस प्रकार है—'अंजनी महर्षि गौतमकी पुत्री थी। केसरीको सब प्रकारका सुख उपलब्ध था, किन्तु पुत्र न होनेसे स्त्री-पुरुष दोनों दुःखी थे। अकस्मात् एक दिन देवर्षि नारदने दर्शन दिये। श्रीमती अंजनीने उनसे अपना दुःख निवेदन किया। देवर्षिने आश्वासन दिया कि पुत्र अवश्य होगा और उसके द्वारा तुम्हारा नाम यावच्चन्द्र-दिवाकर अजर अमर होगा। परन्तु उसके लिये तुम्हें पवनदेवकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न करना होगा। देवी अंजनीने तप करके पवनदेवको प्रसन्न किया। पुत्र प्रदानके हित वे सोचने लगे।'''उन्हीं दिनों महाराज दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ पूर्ण होनेपर ऋष्य शृङ्गने राजाको पायस देकर उसे प्रमुख पटरानियोंमें बाँट देनेकी आज्ञा दी। हव्य लिये हुये महाराज महलमें आये, किन्तु कार्यवशात् महारानी सुमित्रा उस समय वहां उपस्थित न हो सकीं। अतएव उनका भाग अलग रख दिया गया। इसी समय गृध्रका रूप धारणकर पात्र सहित उस हव्यको चोंचमें दबाकर आकाशमार्गसे शीघ्रतापूर्वक पवनदेव वहाँ पहुँचे जहाँ देवी अंजनी ध्यानावस्थित बैठी तप कर रही थीं। गृध्ररूप पवनदेवने वह हव्यपात्र अंजनीकी प्रसरित अञ्जलीमें रख दिया और अन्तर्धान होगये। साथ ही आकाशवाणी हुई,—

भक्षयस्व चरुं भद्रे पुत्रस्ते भविताऽमुना । रक्षसां नाशने हेतुः श्रीरामचरणे परः ।' (भद्रे ! इस पायसको खा । इससे राक्षसों का नाश करनेवाला श्रीरामभक्त पुत्र होगा) । इस प्रकार पवन-देवके आशीर्वादसे देवी अंजनी गर्भवती हुई । चैत्र मासकी पूर्णिमा, चित्रा नक्षत्र, शनिवारको सूर्योदयके समय जब कि सूर्य मेषराशिपर थे, इस महावीर पुरुषका अवतार हुआ ।—(यह कथा किस ग्रन्थमें है इसका उल्लेख उसमें नहीं है) ।

आ०रा०सारकांड सर्ग १में श्रीशिवजीने श्रीपार्वतीजीसे बताया है कि श्रीदशरथजीके पुत्रेष्टि यज्ञसे जो पायस अग्निदेवने राजाको रानियोंमें बाँट देनेको दिया था, उसमेंसे महारानी कैकेयीको जो भाग मिला था उसको एक गृध्रीने शापसे मुक्त होनेके लिये दुष्टभावसे अपहरण कर लिया। यह गृध्री पूर्वमें सुवर्चला अप्सरा थी । एक बार ब्रह्मसभामें नृत्यभंगके कारण ब्रह्माने उसे पृथ्वी-पर गृध्री होनेका शाप दिया । प्रार्थना करनेपर प्रसन्न होकर ब्रह्माने कहा कि जब तू कैकेयीका पायस अपहरणकर अंजनि-पर्वतपर गिरायेगी उसी समय तू शापमुक्त होकर पुनः अपना पूर्वरूप पा जायगी ।

यथा—"आविर्भूत्वा स्वयं वह्निर्ददौ राज्ञे सुपायसम् । राज्ञा विभक्तं स्त्रीभ्यस्तत्कैकेय्या दुष्टभावतः ।१०३। अहरत्पायसं हस्ताद् गृध्रीशापविमोचकम् । सुवर्चलाऽप्सरोमुख्या नृत्यभंगात्स्वयंभुवा ।१०४। शप्ता जाता तु सा गृध्री तया वेधाः सुतोषितः । तस्यै तुष्टो विधिः प्राह कैकेयी पायसं यदा ।१०५। प्राक्षिपस्यंजनिगिरौ तदा ते भविता गतिः । अप्सरा त्वं पूर्ववच्च भविष्यसि न संशयः ।१०६। तस्मात्सा पायसं नीत्वा क्षिपदंजनिपर्वते । निजं स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमंदिरम् ।१०७।"

फिर सर्ग १३ में श्रीरामचन्द्रजीके प्रश्न करनेपर महर्षि

अगस्त्यने श्रीपवननन्दनके जन्म वरप्राप्ति तथा मुनियों द्वारा शाप आदि चरितोंका वर्णन (श्लोक १५५ से १६१ तक) किया है। इनके जन्मकी कथा इस प्रकार है—एक समयकी बात है कि केसरीकी अंजनी नामकी स्त्री अंजनपर्वतपर बैठी थी। इतनेमें आकाशसे किसी गृध्रीके मुखसे छूटकर पायसका एक पिण्ड आ गिरा। यह पिंड वह था जो कि पहले कैकेयीके हाथसे गृध्री छीन ले गई थी। उस अमृततुल्य पिण्डको वानरी (अंजनी) ने खा लिया। इतनेमें केसरीकी दूसरी स्त्री मार्जारास्याभी वहाँ आ पहुँची। पतिकी अनुपस्थितिमें वे दोनों क्रीड़ा कर रही थीं। तभी उनके वस्त्रोंको पवनने उड़ाकर ऊँचे उठाया और उनके जंघोंको देख लिया। पश्चात् उनसे प्रार्थना करके वायुने उनके साथ (मानसी) भोग किया। माता अंजनीसे मारुतात्मज हनुमान्जीका जन्म चैत्र शुक्लपक्षकी एकादशी मघानक्षत्रमें हुआ। महाचैत्री पूर्णिमाको जन्म होना भी कहा जाता है। कल्पभेदसे दोनों हो सकते हैं।

इस सम्बन्धके श्लोक ये हैं—'केसरीनाम विख्यातः कपिरंजनपर्वते। तस्यास्तां च शुभे पत्न्यौ वानर्यावेकदा गिरौ ।१५५। प्लवंगस्यांजनीनाम्नी स्थिता तावच्च खात्तदा। पपात पायसमयः पिंडो गृध्रीमुखाद्भुवि ।१५६। यदा नीतस्तु कैकेय्या कराद्गृध्र्या शुभाः पुरा। तं पिंडं भक्षयामास वानरी ह्यमृतोपमम् ।१५७। एतस्मिन्नंतरे तत्र मार्जारास्या समागता। पतिना रहिते ते द्वे क्रीडंतौ वसनं तयोः ।१५८। अहरत्पवनो वेगाद्दृष्ट्वा वायुस्तदूरवः। अंजनीं प्रार्थयामास तया भोगं चकार सः ।१५९। तयोस्ताभ्या समुत्पन्नौ वानर्यां मारुतात्मजः ।१६१। चैत्रे मासि सिते पक्षे हरिदिन्यां मघाभिधे। नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुसूदनः ।१६२। महाचैत्री पूर्णिमायां समुत्पन्नोऽजनीसुतः। वदंति कल्पभेदेन बुधा इत्यपि केचन ।१६३।'

१०—सेवत सुलभ' कहकर 'गुन गनत नमत सुमिरत जपत' यह सौलभ्य दिखाया। यथा 'आधिव्याधिग्रहा बाधा शाकिनीडाकिनी तथा। सर्वे पराभवं यान्ति स्मरणात्पवन-नन्दम्।' (अगस्त्य संहिता)। 'सेवक हित संतत निकट' और 'समन सकल संकट विकट' यह सेवाका फल बताया।

२ छप्पय

स्वर्नसैल संकास कोटि रवि-तरुन तेज घन।
उर बिसाल भुजदंड चंड नख वज्र बज्र तन॥
पिंग नयन भृकुटी[1] कराल रसना दसनानन।
कपिस केस कर्कस लँगूर[2] खल दल बलभानन॥
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष कहँ[3] सपनेहु[4] नहिं आवत निकट॥

शब्दार्थ—स्वर्नसैल (स्वर्णशैल)=सोनेका पर्वत= सुमेरु पर्वत। संकाश=चमक, प्रकाश। देदीप्यमान। समान, सदृश। रवि तरुण=मध्याह्नकाल (दोपहर) के सूर्य। घन= प्रचुर, समूह राशि। तेज घन=महान् तेजस्वी, तेजोराशि। विशाल=चौड़ी। भुजदंड=भुजायें। चंड=प्रबल; अत्यंत बलवान।=दुर्दमनीय। वज्र=हीरा (यह घनकी चोटसे भी नहीं टूटता); इन्द्रका शस्त्र।=वज्र समान कठिन कठोर अत्यंत दृढ़ एवं पुष्ट और कड़ा। पिंग=पीलापन लिये हुये भूरा; भूरा-पन लिये हुए लाल; दीपशिखाके रंगका; तामड़े रंगका। रसना

---

१ भ्रुकुटी-पं०, च०, छ०। २ लगूल-ह०। लँगूर-छ०, च०, व०, पं०, श०। ३ स्यहि-वै०। ४ पहि-द्वि०। पहि-स०। सपनेहु-ह०, श०। सपनेहुँ-छ०, च०, पं०, व०।

=जिह्वा, जीभ। दसनानन (दशन+आनन)=दाँत और मुख। कपिश=पीला भूरा, लाल भूरा।=किंचित् पीत मिश्रित लाल-वर्ण—(ह०)। केश=बाल। कर्कश=कठोर; प्रचंड सुदृढ़। लँगूर (लांगूल)=पूँछ। दल=समूह, सेना, मंडली। भानना=तोड़ना, भंग करना, नाश करना। सपनेहु=स्वप्नमें भी अर्थात् कभी भी। विकट=विशाल, भीषण, भयंकर। संताप—तीनों प्रकारके तापही संताप है। दुःख, कष्ट व्यथा।

पद्यार्थ—सुमेरु पर्वतके समान देदीप्यमान (एवं विशाल), करोड़ों मध्याह्नकालके सूर्योंके तेजसमूहके समान महान तेजस्वी चौड़ी छाती अत्यंत बलवान् दुर्दमनीय सुदृढ़ भुजाओं, इन्द्रके वज्रके समान शत्रुको विदीर्ण करनेवाले नखों और वज्र समान अत्यन्त दृढ़, पुष्ट, कड़े कठोर शरीर वाले हैं। नेत्र तामड़े रंगके हैं; भौंहें, जिह्वा, दाँत और मुख भयंकर है; बाल किंचित् पीत-मिश्रित लाल रंगके हैं, पूँछ प्रचंड एवं कठोर तथा दुष्टोंकी सेनाके बलका नाश करनेवाली है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके हृदयमें पवनसुत हनुमान्‌जीको (यह) विकट मूर्ति बसती है, उस पुरुषके पास संताप और पाप कभी भी नहीं आते। २।

टिप्पणी—१ इस पदमें श्रीमारुतीजीके उस 'विकट' विग्रहका ध्यान वर्णित है, जिससे 'संताप और पाप' कभी भी पास नहीं आने पाते। हृदयमें यह स्वरूप जम जानेसे भक्तको सब प्रकारसे रक्षामें विश्वास बना रहेगा।

२ 'स्वर्णसैल 'संकाश···'—इससे जनाया कि उनका शरीर स्वर्णपर्वत सुमेरुके समान लम्बा-चौड़ा और ऊंचा था तथा उनकी प्रभासे सारा आकाशमंडल प्रज्वलित-सा था। यथा 'तमर्कमिव तेजोभिः सौवर्णमिव पर्वतम्। प्रदीप्तमिव चाकाशं···।

भा० वन १५० ।'—कुछ इसी प्रकारके रूपको देखकर भीमसेन घबड़ा गये, इनके रोंगटे खड़े होगये, वे उनकी ओर देख न सके, अपनी आखें बन्द कर ली थीं ।— भीमोन्यमीलयत्', 'सम्प्रहृष्टतनूरुहः', न हि शक्नोमि त्वां द्रष्टु" (भा० वन० १५०।८, ११, १३)। भीमको जो दर्शन कराया गया, वह इतना टेजोमय नहीं था, क्योंकि भीममें उसको देख सकनेकी शक्ति न थी। सुमेरुसे भी बहुत अधिक तेज शरीरमें था, यह दिखानेके लिये फिर 'कोटि रवि तरुन तेज' भी कहा ।—'तेजको निधान मानो कोटिक कृसानु भानु। क० ५।४।'

३—'भुजदंडकी प्रचंडता',—'हाथिनसों हाथी मारे घोरे घोरेसो सँघारे रथनिसों रथ बिदरनि बलवान की।', 'पकरि पछारे, कर चरन उखारे, एक चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं।', 'सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को।' (क० ५। ४०, ४१, ५५)-इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है। 'रसना कराल'—क्रोधमें भर जानेपर जीभका लपलपाना रसनाकी करालता है।

४—'कर्कश लँगूर'—पूँछ (लांगूल) ध्वजाके समान ऊँची और विशाल थी, उसकी रोमावली घनी थी। बड़ी कठोर थी। उसकी साधारण फटकारसे वज्रकी गड़गड़ाहटके समान महान शब्द होता था। (भा० वन० १४६)। 'लांगूल' से वीरों को लपेट-लपेटकर पटक देते थे और जिनसे काल भी डरता था, ऐसे वीरोंको लपेटकर आकाशमे इतनी ऊँचानपर फेंक दिया कि वे फिर लौट न सके।—'सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम बात न भूतल आए।' (क० ६।३७, ४०, ४२, ४७ देखिये)—यह सब लांगूलकी कर्कशता है।

३ (झूलना)

पंचमुख छमुख भृगुमुख्य[१]-भट असुर सुर,
सर्व सरि समर समरत्थ सूरो ।
बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली,
बेद बंदी बदत पैज पूरो ॥
जासु गुनगाथ रघुनाथ कह जासु बल,
बिपुल-जल-भरित जग जलधि झूरो ।
दीन[२] दुख दवन[३] को[४] कौन तुलसीस है,
पवनको पूत रजपूत रूरो ।३

शब्दार्थ— पंचमुख = पांच मुखवाले श्रीशिवजी । छमुख = कार्त्तिकेयजी जिनके छः मुख हैं; स्वामिकार्तिकजी, षड़ानन । भृगुमुख्य भट = भृगपति, भृगुनाथ, भृगुवर, भृगुनायक आदि परशुरामजीके नाम हैं। विशेष टिप्पणी १ (ग) में देखिये । सरि = बराबर । समर = युद्ध, संग्राम । सूर = शूरवीर । बाँकुरा = कुशल, अत्यंत साहसी । बिरुदैत = बहुत अधिक प्रसिद्ध वीर जिसके नामका यश बखाना जाय; बानादैद । बिरुदावली = यश की कथा; कीर्तिकी गाथा; प्रशंसाके गीत । विरुद = यश, बड़ाई, कीर्ति । बंदी = भाट । बदत = वर्णन करते हैं । पैज = प्रतिज्ञा । पूरो = पक्के, दृढ़, अटल । गाथ = कथा । बिपुल = अगाध; बहुत गहरा । भरित = भरा हुआ, पूर्ण । जलधि = समुद्र । झूरा = सूखा । पूत = पुत्र । राजपूत = वीर पुरुष, योद्धा । प्राचीनकाल

१ मुक्ख—ह० । २ दुवन दल दवन—द्वि० । दुवन दल दमन--च० । दीनदुख दमन--छ०, च०, पं०, श० । दीन दुखदवन--ह०। ४ कों--ह०।

से राजपूत बहुतही वीर योद्धा, देशभक्त और स्वामिभक्त होते आये हैं। रणसूर होनेसे यहाँ हनुमान्‌जीको 'रूरा रजपूत' कहा। रूरा = प्रशस्त; श्रेष्ठ; उत्तम।

पद्यार्थ—पाँच मुखोंवाले भगवान् शंकर, छः मुखोंवाले श्रीकार्तिकेयजी, (दश अवतारोंमें जिनकी गणना है वे आवेशावतार) भृगुमुख्यभट श्रीपरशुरामजी तथा समस्त देवता और समस्त असुर (दैत्य, दानव, राक्षस आदि) योद्धाओंके (संगठित होकर युद्ध करनेपर भी उनके) साथ बराबर संग्राम करनेमें (जो) समर्थ शूरबीर हैं अत्यंत साहसी बानेबंद वीर (जिनके) प्रशंसाके गीत वेदरूपी भाट गाते हैं जो प्रतिज्ञाके पक्के हैं (अर्थात् जो दृढ़प्रतिज्ञ हैं, जो भी प्रतिज्ञा करते हैं, कहते हैं, उसे पूरा कर दिखा सकते हैं) जिनके गुणोंकी गाथा (स्वयं) श्रीरघुनाथजी कहते हैं, जिनके बलके सामने अगाध जलसे भरा हुआ संसार-समुद्र सूखा (सा) है,—तुलसीदास के समर्थ स्वामी उन उत्तम वीर योद्धा पुरुष पवनकुमारके सिवा दीनोंका दुःख मिटानेवाला दूसरा कौन ईश (समर्थ) है? (अर्थात् कोई नहीं है)।

टिप्पणी—१ 'पंचमुख छः मुख ’—(क) पंचमुख शंकरजी संहारके देवता हैं, त्रिपुरारि हैं। प० पु० पातालखण्डमे श्रीहनुमान्‌जीका शंकरजीसे मुठभेड़का प्रसंग आया है। श्रीरामाश्वमेधयज्ञका घोड़ा जब देवपुरके राजा वीरमणिने बाँध लिया और घोर युद्धमे वीरमणि मूर्छित होकर गिरे, तब शंकरजी पार्षदों सहित अपने भक्तकी तरफसे युद्ध करने आए। घोर युद्ध हुआ। श्रीशत्रुघ्नजीके मूर्छित होकर गिरनेपर श्रीहनुमान्‌जी स्वयं शंकरजीसे युद्ध करने आये। अन्तमें उन्होंने भगवान्

भूतनाथको अपनी पूँछमें लपेट लिया और क्षण-क्षणमें प्रहार करके उनको अत्यन्त व्याकुल कर दिया। इनके महान् पराक्रम को देखकर शंकरजी बहुत संतुष्ट हुए।—(पूरा प्रसंग अध्याय ३९ से ४६ तक है। अ० ४४ में शंकर-हनुमान-युद्ध है)। (ख) षड़ाननने, जब वे छ: दिनके बालक थे तभी, तारकासुरका वध किया था; ऐसे पराक्रमी थे। ये देवताओंके सेनापति हैं।—'सुरसेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू। १।३१७। ५।' वे अमित तेजस्वी थे। उन्होंने अकेलेही असंख्यों महाबली दैत्यसेनाका नाश किया। उनके सिंहनादसे कितनेही मर गये, कितनेही पताकासे कंपित होकर मर गये; रणभूमिमें बार-बार चलाई हुई उनकी शक्ति शत्रुओंका संहारकर फिर उनके हाथमें लौट आती थी, इत्यादि।—ऐसा उनका प्रभाव है। (भा० शल्य० ४६।६८-१००)। (ग)—'भृगुमुख्यभट' इति। भृगुकुलमें भृगु, ऋचीक, जामदग्न्य आदि सभी भट—वीर थे एवं शस्त्रास्त्रधारी थे। उस भृगुकुलमें मुख्य भट परशुरामजी थे। अतः 'भृगुमुख्यभट' एक समासित शब्द है। परशुरामने सहस्र हाथों वाले कार्त्तवीर्य अर्जुनको कुलसहित मारा था। फिर शंकरजी के पार्षद भी वैसेही भयंकर हैं, जो सदा उनके साथ रहते हैं। संसारमें इन तीनोंसे बढ़कर वीर नहीं; इसीलिये इनके नाम दिये। जब ये इनकी समताको नहीं पा सकते, तब त्रिलोकीमें और कौन है जो इनका सामना कर सके?—इस तरह तीनों लोकोंके महाबली-योद्धा सूचित कर दिये। (घ)—'असुर सुर सर्व'—समस्त सुर असुर मिलकर भी जिस रावणको नहीं जीत सकते—('नह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः। वा० ७। २३।१२; ७।२७।१५)—उस रावणकी राजधानीमें गरज-गरज-कर इन्होंने घोषणाकी कि 'सहस्रों रावण मिलकर भी मेरा सामना नहीं कर सकते।'—समस्त सुरासुर मिलकरभी सहस्र

रावणके बराबर नहीं होसकते, तब इनके सामने कब ठहर सकते है ?

२ [क] 'सरि समर समरत्थ'—ब्रह्माका इनको वरदान भी है—'अजेयोभविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः। वा० ७।३६। २३।' (मारुत ! तुम्हारे पुत्र मारुतीको युद्धमे कोई भी न जीत सकेगा।)। सुर असुर कोई भ इनको पाशसे नहीं बाँध सकते। —'अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥… वा०५।५०।१६।' [ख]--'बाँकुरो बीर…'—लाखों सूरसमाजोंमें जो महाबलवान् तेजस्वी रणबाँकुरे बिरुदैत वीर गिने जाते थे, उनको इन्होंने प्रचार प्रचारकर मारा है यथा 'लक्खमें पक्खर तिक्खन तेज जे सूरसमाजमें गाज गने हैं। ते बिरुदैत बली रनबाँकुरे हांकि हठी हनुमान हने हैं। क० ७।३६।' इस तरह सब वीरोंपर इनकी धाँक जम गई है। पंचमुख आदि संगठित होकर भी इनपर विजय नहीं प्राप्त कर सकते।—यह बाँकी वीरताका सर्वश्रेष्ठ बाना है, इसे तथा प्रतिज्ञाके पूरे होनेकी यशावली वेद गाते हैं।

३—'पैजपूरो'—श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर श्रीराम-जीको विषादयुक्त देखकर इन्होंने कहा है—'हनुमतिकृत प्रतिज्ञे दैवमदैवं यमोप्ययमः।…।' (ह० ना० १३।१६)—"हनुमानके प्रतिज्ञा करनेपर दैव अदैव होजाता है और यम भी अयम हो जाता है। क्या मैं पातालसे अमृतसरको ले आऊँ ? या चन्द्रमा को निचोड़कर अमृत ले आऊँ ? या प्रचंड किरणमाली सूर्यको वारण कर दूँ ? या निरंतर पाशधारी यमराजको ही चूर-चूर कर डालूँ ?"—यह सुनकर श्रीरामजी कहते हैं—'यद्यदुक्तमनेन महावीरेण तत्तदिदानीमेव कृत्वा दर्शयति।… १७।' जो जो इस इस महावीरने कहा है, वह सब यह अभी करके दिखा देगा; परन्तु ऐसा करनेसे बिना समय ही महाप्रलय हो जायगा। गी०

६।८,६ में यही बात गोस्वामीजीने लिखी है—'सत्य सुमीर-सुवन सब लायक…'।

४—'गुनगाथ रघुनाथ कह'—"यहाँ इस पदमें उनके भुज-बलका पराक्रम दिखाते आ रहे हैं कि समस्त लोकोंके वीर भी एकसाथ आकर युद्ध करें तो भी ये उनसे लोहा लेनेमें समर्थ हैं। उसी संबंधसे यहां गुणगाथसे अन्य गुणोंके अतिरिक्त विशेष रूपसे इनके पराक्रम, साहस, धैर्य आदि वीरताके गुणोंकी कथायें ही अभिप्रेत है। ये गुण उनके सुन्दरकांड तथा लंका (युद्ध) कांडमें प्रकट रूपसे वाल्मीकीय, अध्यात्म, कम्ब, आनंद आदि प्रायः सभी रामायणों तथा रामचरितमानस, कवितावली आदिमें दृष्टिगोचर होरहे हैं। वा० ६।१।२-१२ में श्रीरामजीने इनके गुण कहे हैं और वा० ७।३५।२-१० मे महर्षि अगस्त्यसे कहकर अपनी शंकाका निवारण करनेके लिये (तथा सभीको इनका चरित मालूम होजाय इसलिये) विस्तारसे चरित सुनाने की प्रार्थना की है। 'मानस' मे भगवान् शंकर स्वयं कहते हैं—'हनूमान सम नहिं बड़भागी।…गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई।७।५०।८-६।'

५—'बल बिपुल भूरो'-अगाध जलपूर्ण समुद्रको इनके भुजबलके आगे सूखा हुआ कहकर जनाया कि बलरूपी जलसे भरे हुए इनके भुजरूपी सागरके सामने यह सागर तुच्छ है, इसको लोग पार कर जाते हैं, परन्तु इनके भुजबलका पार कोई नहीं पासका। मिलान कीजिये—'सम भुजसागर बल-जलपूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥ को अस सूर जो पाइहि पारा॥' [और भाव ये हैं—(१) अपार अगाध जलपूर्ण समुद्रको अपने पराक्रमसे सूखी भूमिके समान लाँघ गये। (ह०)। (२) मोह आदि रूपी जलसे पूर्ण संसार (भव) सागरको अपने पुरुषार्थ

से सुखा दिया अर्थात् अनायास भवसागर पार होगये। (ह०)]

६—'कौन तुलसीस है'? अर्थात् दूसरा ऐसा ईश (समर्थ) कोई नहीं है। आगे बताया है कि एक यही हैं—'आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर तुलसीको साहिब हठीलो हनुमान भो। (११)।' सुग्रीव, देवता और विभीषण दीन दुखी थे। इनकी सहायतासे इन सबोंके दुख दूर हुए।— नतग्रीव सुग्रीव दुःखैक बंधो। वि० २७।'. 'गत-राज्य-दातार। वि० २८।', 'विभीषन बरद। वि० २६।'

घनाक्षरी (छ०, च०, पं०)

भानु सों[1] पढ़न हनुमान गये भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन मन,
क्रम को[2] न भ्रम कपिबालक बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल[3] हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि[4] खँभार[5] सो।
बल कैधों[6] बीररस धीरज कै[7] साहस कै
तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो॥४

शब्दार्थ—भानु=सूर्य। अनुमानि=विचारकर, अटकल या अंदाजा करके। शिशुकेलि=बालक्रीड़ा, बालपनका खेल।

---

१ सो, २ कौ, ४ चितन, ६ कैंधो, ७ के साहसु–ह०। ३ सुरपाल-च०, छ०। ५ खभार-ह०, व०। १ सो, २ को, ४ चित्तनि, ६ कैधौं, ७ कै साहस-च०, छ०, व०, ज०।

फेरफार=युक्तिकी बात, टालमटोल, बहाना। पाछिले पगनि गम=पीछेकी ओर पैरोंसे चलते हुए (जिसमें सूर्यके सम्मुख मुख रहे।)। गम=चलते हुए। गगन=आकाश। मगन (मग्न) =प्रसन्न। क्रम=वैदिक विधान; वेदोंके पाठका प्रकार (क्रम-पाठ), पाठ्यक्रम। शब्दोच्चारणकी शास्त्रीय परिपाटी। =पैर रखने डग भरनेकी क्रिया। भ्रम=भूल; कुछ-का-कुछ समझना। विहार=केलि, क्रीड़ा; दिलबहलाव; खेल। कौतुक=तमाशा, आश्चर्य, विनोद, कुतूहल। चकाचौंधी=अत्यन्त प्रखर तेजके सामने दृष्टिका न ठहर सकना 'चकाचौंध होना या चौंधियाना' है; तिलमिलाहट। खँभार=खलबली; विस्मय; उद्वेग। कैधौं= या; अथवा। सार=किसी वस्तुका मुख्य भाग; सत्त, मूल वस्तु, सारभूत।

पद्यार्थ—श्रीहनुमान्‌जी भगवान सूर्यसे (विद्या) पढ़नेके लिए गए। सूर्य भगवान्‌ने मनमें इसे इनका बालकेलि विचार कर टालमटोल किया (कि साथ-साथ भागते चलना होगा। क्या तुम ऐसा कर सकोगे ?)। श्रीहनुमानजी प्रसन्न मनसे आकाशमें पीछेकी ओर पैरोंसे चलते हुए (जिसमे सूर्यके सम्मुख मुख रहे), वेदोके पाठ्यक्रममें (तथा उलटा चलनेमें पाद-न्यासका) उनको भूल नही हुई। यह उनके लिये वानरके बच्चे का खेल था। (यह) आश्चर्यका विनोद देखकर लोकपालों, भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर और ब्रह्माके नेत्रोंमें चकाचौंधी और चित्तोंमे खलबली-सी होगई। तुलसीदासजो कहते हैं कि (वे सब सोचने लगे कि) न जाने यह (मूर्तिमान्) बल है, वीररस है, धैर्य है या साहस है, या इन सबोंका सार ही शरीर धारण किये हुए है ४

टिप्पणी—१ 'भानु सों पढ़न गये'—भगवान् सूर्य नारा-

यणको वेदोंका ज्ञान जैसा है ऐसा कदाचित् ही किसी को हो। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्हींसे पढ़ा, महर्षि भरद्वाजने भी इनसे पढ़ा। अतएव उन्हींसे ये भी पढ़ने गये। दूसरे, भगवान् सूर्यने पवनदेवको वर दिया था—'यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति। तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति। न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने। वा० ७।३६।१४।' अर्थात् 'जब तुम्हारे इस पुत्रमें शास्त्राध्ययन करनेकी शक्ति आ जायगी, तब मैं ही इसे शास्त्रोंका ज्ञान प्रदान करूँगा, यह अच्छा वक्ता होगा। शास्त्रज्ञानमें कोई भी इसकी समानता करने वाला न होगा।'—अतः ये व्याकरणका अध्ययन करनेके लिए उन्हींके पास गये। 'हनुमान' अर्थात् जो अपनेही कर्मों द्वारा त्रैलोक्यमें 'हनुमान्' नामसे विख्यात हैं—'हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा। वा० ५।३५।८३।' वह कर्मभी सूर्यको लपक कर लेनेके प्रसंगसे ही सम्बन्धित है। कथा पद २८ में आई है।

२—'मन अनुमानि सिसुकेलि'—इसका अर्थ यह है कि ये विद्या अध्ययन जो करने आये हैं, यह इनका शिशुकेलिही जान पड़ता है, अभी ये इस योग्य नहीं हैं। अतः इनकी योग्यता देखनेके लिये बहाना किया कि मैं एक जगह स्थिर नहीं रहता, विना आमने-सामने रहे पढ़ना-पढ़ाना असम्भव है, मेरे रथके सामने मेरी ओर मुख किये पीछेकी ओर पैर रखते हुए तीव्र गतिसे साथ-साथ चलना होगा। क्या तुम ऐसा कर सकोगे? —ये ऐसा करनेको तैयार ही नहीं हुए वरन् तुरन्त वैसेही चलने लग गये।—'असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन् सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः। उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः। वा० ७।३६।४५।'—(अगस्त्यजी कहते हैं कि) ये असीम शक्ति-शाली कपिश्रेष्ठ हनुमान् व्याकरणका अध्ययन करनेके लिए

शङ्कायें पूछनेकी इच्छासे सूर्यकी ओर मुख रखकर महान् ग्रन्थ धारण किये उनके आगे-आगे उदयाचलसे अस्ताचल तक जाते थे।

'फेर-फार'—यह बहाना ही था, नहीं तो याज्ञवल्क्य आदिका पढ़ना इस प्रकार सुना नहीं जाता। श्रीकान्तशरणजी का मत है कि "सूर्यने इनके शिशुखेलके पराक्रमका अनुमानकर और इस अवस्थाके पराक्रमका कुछ विकाशकर इनकी कीर्त्ति प्रकट करनेके लिए उपयुक्त बहाना किया।"

३—'क्रमको न भ्रम'—पाठ्यक्रम (वैदिक विधान) में किंचित् भी भूल नहीं होने पाई। श्रीरघुनाथजीके वाक्य प्रमाण में दिये जा सकते है जो उन्होंने लक्ष्मणजीसे (वा० ४।३।२८-३३ में) कहे हैं। प्रसंगसे सम्बन्ध रखनेवाले वे वचन ये हैं—'बहुत सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुँहसे कोई अशुद्धि नहीं निकली। संभाषणके समय इनके मुख, नेत्र ललाट, भौंह तथा अन्य सब अंगोंसे भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा ज्ञात नहीं हुआ। ये संस्कार और क्रम (व्याकरणके अनुकूल शुद्ध वाणी तथा शब्दोच्चारणकी शास्त्रीय परिपाटी) से सम्पन्न, अद्भुत, अविलंबित तथा हृदयको आनंदित करनेवाली कल्याणमयी वाणीका उच्चारण करते हैं—'संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम्। उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ।३२।'—[गुरुसे विद्या प्राप्त कर चुकनेपर गुरु-दक्षिणा दी जाती है। अतः श्रीहनुमान्‌जीने गुरुको प्रणामकर उनसे गुरुदक्षिणा माँगने को कहा। सूर्यनारायणने अपने अंशसे उत्पन्न हुए पुत्र सुग्रीवकी सदा रक्षा करते-रहनेका वचन गुरुदक्षिणाके रूपमें चाहा और श्रीहनुमान्‌जीने वचन तो क्या प्रतिज्ञाके रूपमें यह गुरुदक्षिणा दी और तभीसे ये किष्किधामें आकर सुग्रीवके अन्तरंग मंत्री बने।]

४—'लोकपाल हरि हर विधि लोचननि...'—इससे जनाया कि इस समय उनका शरीर महान् तेजोमय है और पीछेकी ओर पैरोंसे चलते हुए भी वे बड़ी तीव्र गतिसे गमन कर रहे हैं, इसीसे आँखें उस प्रखर तेजके सामने नहीं ठहर पाती, चौंधिया जाती हैं। इनके तेजका कुछ उल्लेख 'स्वर्णशैल संकाश' पद २ में हुआ है।

५—'चित्तनि खँभार सो'—सबके चित्त उद्विग्न हो गए। सभी विस्मयको प्राप्त होगए। 'खँभार'का स्वरूप आगेके वचनों से प्रकट है. सभीके चित्तोंमें एक साथ ये विचार उठे कि 'अरे, यह क्या है ?' बलकी सीमा देखकर 'मूर्तिमान बल' का अनुमान हुआ, प्रचंड किरणमाली-सूर्यके सम्मुख प्रसन्न मन से तीव्र वेगसे चलनेसे 'वीररस' की सीमा समझकर मूर्त्तिमान 'वीररस' का, इसी तरह क्रमशः मूर्त्तिमान् धैर्य और साहसका अनुमान हुआ। बल, वीरता, धीरज और साहस इत्यादि सभी की सीमा देखकर यही अनुमान अंतमें हुआ कि सभी गुणोंका सार (निचोड़) ही इनका स्वरूप धारणकर प्रकट हुआ है। भाव कि इनसे बढ़कर बलवान् वीर, धैर्यवान् और साहस आदि समस्त गुणयुक्त दूसरा नहीं हुआ। महर्षि अगस्त्यने भी कहा है—'संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो।'—'पराक्रमोत्साहमतिप्रतापसौशील्य माधुर्यनयानयैश्च। गाम्भीर्य-चातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके। वा० ७।३६। ४४।'—यह बात कहते हुए उन्होंने इसी प्रसंगमें सूर्य भगवान्‌से विद्या किस प्रकार पढ़ी यह बताया है। इस उद्धरणके 'पराक्रम, उत्साह, सुवीर्य, धैर्य' यहाँके बल, साहस, वीररस और धीरज हैं, जो लोकपालादिको दृष्टिगोचर हुए।

भारथ[१] में पारथ के रथकेतु कपिराज,
गाज्यौ[२] सुनि कुरुराज दल[३] हलबल भो† ।
कह्यौ[४] द्रोन भीषम समीरसुत[५] महाबीर,
बीररस बारिनिधि जाको बल जल भो ॥
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लागि[६],
फलगु[७] फलाँगहूं ते[७] घाटि नभ तल भो।
नाइ नाइ माथ जोरि जोरि हाथ जोधा जोहैं,
हनुमान देखे जग जीवन को फल भो ॥५

शब्दार्थ—भारथ = भारत (महाभारत) संग्राम । पारथ (पार्थ) = पृथा (कुन्ती) के पुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन । यहाँ अर्जुनसे तात्पर्य है । केतु = ध्वजा, पताका । गाजना = गरजना; गर्जन करना; बहुत गँभीर भीषण तुमुल शब्द करना । कुरुराज = दुर्योधन । दल = सेना । हलबल = खलबली, कुलबुलाहट, हलचल । भो = हुई, मच गई । द्रोन = द्रोणाचार्य । भीषम = भीष्मपितामह । समीर = पवनदेव । बारिनिधि = समुद्र । सुभाय = स्वभाव की; स्वाभाविक । केलि = क्रीड़ा, खेल । लगि = तक । फलगु (फल्गु) = साधारण, सामान्य, छोटी । (श० सा०) ।= स्वल्प—(ह०) । फलाँग = एक स्थानसे उछलकर दूसरे स्थानपर जानेकी क्रिया या भाव; उछाल, छलाँग, कुदान, फँदान, चौकड़ी । वह दूरी जो फलाँगसे तै की-जाय । घाटि =

१ भारथ-ह०, ज०, श० । भारत--औरोंमे । २ गाज्यौ ४ कह्यौ-ह० । गाज्यो, कह्यो--औरोंमें । ३ दल सब-द्वि० । दल--औरोंमें । † चलभो-वै० । ५ समीरसूनु--द्वि० । ६ लागि-व० । ७ फलँग फलाँगहू ते-छ०, व०, च० पं०। फलँगु फलाँगहू ते-श० । फलगु कलांगहू ते--ह०, ज० ।

कम। तल = फैलाव । नभतल = आकाशका फैलाव (बाह्य विस्तार)। नाइ = झुकाकर, नवाकर। माथ = मस्तक, सिर। जोहना = देखना, दर्शन करना। फल = लाभ।

पद्यार्थ—महाभारत संग्राममें अर्जुनके रथकी ध्वजा-पर कपीश हनुमानने गर्जन किया, (जिसे) सुनकर दुर्योधन-की सेनामें खलबली मच गई। द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह-जीने कहा कि—ये महावीर पवनसुत हैं, जिनका बल वीररस-रूपी समुद्रका जल हुआ। स्वाभाविक वानर बालक्रीड़ामें पृथ्वीसे लेकर सूर्य तक आकाशतल इनके एक साधारण स्वल्प छलाँगसे भी कम (सिद्ध) हुआ। योद्धा मस्तक नवा-नवा और हाथ जोड़जोड़कर दर्शन करने लगे। श्रीहनुमान्‌जीके दर्शनसे संसारमें जीवनका फल प्राप्त हो गया (भाव कि दर्शन पाकर सब अपने-अपने भाग्यकी सराहना करने लगे कि आज हम धन्य हुए, कृतार्थ होगए)।५।

टिप्पणी—१ 'पारथके रथकेतु कपिराज……' इति।

(क) आनन्दरामायण मनोहरकाण्ड सर्ग १८ में विष्णु-दासने अपने गुरु श्रीरामदासजीसे श्रीहनुमान्‌जीके अर्जुनजी-की ध्वजामें बैठनेका कारण पूछा जिससे अर्जुनका 'कपि-ध्वज' नाम पड़ा। गुरुदेवने पूरा चरित कह सुनाया जो इस प्रकार है— 'एक बार अर्जुन अकेले ही मृगयाके लिये दक्षिण-की ओर गए, रामेश्वर सेतु धनुषकोटमें मध्याह्नकालमें, स्नान आदि करके कुछ गर्वसहित समुद्र तट पर विचरने लगे।— 'अब्धेस्तटे विचचार किंचिद्‌गर्वसमन्वितः।' इसी बीचमें उन्होंने पर्वतके ऊपर बनमें साधारण कपिरूपमें बैठे मधुर मंगलमय रामनामका उच्चारण करते हुए मारुतीको देखकर उनका नाम पूछा। कपिने कहा कि जिसके प्रतापसे श्रीराम-

ने शतयोजन समुद्रपर पत्थरोंद्वारा सेतु बाँध दिया, तुम मुझे वही वायुपुत्र जानो।—'यत्प्रतापाच्च रामेण शिलाभिः शतयोजनम्। बद्धोऽयं सागरे सेतुस्तं मां त्वं विद्धि वायुजम्। ६।' ये गर्वीले वचन सुनकर अर्जुन बोले—'सेतुके लिये व्यर्थ ही तुमने परिश्रम किया। उन्होंने बाणोंसे ही क्यों न सेतु बाँध दिया?' मारुतीने उत्तर दिया कि हमारे समान वानरोंके भारसे शरसेतु डूब जाता, ऐसा समझकर श्रीरघुनन्दनने वैसा नहीं किया। इसपर अर्जुनने कहा—'कपिके भारसे यदि सेतु डूब जाय तो धन्वीकी धनुर्विद्या ही क्या? 'धनुर्विद्याधन्विनः का तदा वानरसत्तम।१४।' लो तुम मेरी धनुर्विद्या देखो, मैं सेतु बनाता हूँ, तुम उसपर मनमाना नाचो कूदो। मारुतीने हँसकर कहा कि मेरे चरणके अँगूठेके ही भारसे तुम्हारा सेतु डूब जाय तो तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ। इसपर अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि यदि सेतु डूब जाय तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। यह सुनकर कपिने भी प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे अँगुष्ठके भारसे पुल न लुप्त हुआ तो मैं तुम्हारी ध्वजामें स्थित रहकर तुम्हारी सहायता करूँगा।—'तर्हि त्वध्वजसंस्थोऽहं तव साहाय्यमाचरे।२०।' अर्जुनने शरसमूहसे दृढ़ सेतु निर्माण कर दिया और मारुतीने अँगुष्ठभारसे क्षणमात्रमें उसे सागरमें डुबा दिया। कपिके मना करनेपर भी अर्जुनने चिता रची और देह त्याग करनेको उद्यत हुए। इतनेहीमें श्रीकृष्णजी बटुरूपसे वहां प्रकट होगए। पूछनेपर अर्जुनने प्रतिज्ञाका सब वृतान्त कह सुनाया। तब बटुने कहा कि बिना साक्षीके तुम दोनोंने जो कुछ कहा या किया वह सब व्यर्थ गया क्योंकि बिना साक्षीके कर्मकी सत्यता असत्यताका बोध नहीं होता। अब मैं साक्षी हूँ, मेरे सामने पूर्ववत् सब कर्म करो। मैं देखकर सत्य या मिथ्याकी साक्षी

दूँगा। दोनोंने बात मान ली। अर्जुनने शरसेतु रचा। भगवान्ने उसके नीचे चक्रको स्थापित कर दिया,—'सेतोरन्तर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चाकरोत् तदा ॥३०॥' वानरराजने अँगूठेके भारसे उसे डुबाना चाहा। वह न डूबा तब उन्होंने क्रमशः चरण, घुटने और हाथ आदि का बल लगा दिया। फिरभी सेतु टसका तक नहीं। तब वे मनमें कारणपर विचार करनेलगे और निश्चयकिया कि यह वटु नहीं है, स्वयं हरि हैं, मेरा गर्व दूर करनेके लिये प्रकट हुए हैं। पूर्व पाये हुये वरका स्मरण उनको हुआ।—ऐसा निश्चय करके वे अर्जुनसे बोले—'वटुकी सहायतासे तुम जीत गये। यह वटु नहीं है, श्रीकृष्ण है, तुम्हारी सहायतार्थ इन्होंने सेतुके नीचे चक्रको स्थापित किया। त्रेतामे मुझे श्रीरामने वर दियाथा कि द्वापरमें कृष्णरूपसे तुम्हे दर्शन देंगे। तुम्हारे सेतुको हेतु बनाकर अपने वचनको सत्य किया। इतनेहीमे वटु कृष्णरूप होगए, हनुमान्जीने प्रणाम किया। भगवान्ने हृदयसे लगाकर उनको कृतकृत्य किया। चक्र भगवान्के पास आगया और शरसेतु समुद्रकी लहरोंसे डूब गया। अर्जुनका गर्व जाता रहा। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि तुमने श्रीरामका अपमान किया,—'त्वया रामेण स्पर्द्धितम्।' हनुमान्ने तुम्हारी धनुर्विद्याको मृषा कर दिया। और, हे वायुनन्दन! तुमने भी 'यत्प्रतापाच्च…' इस वाणीसे श्रीरामकी स्पर्द्धा की, इसीलिये अर्जुन द्वारा जीते गए।' अतएव अपनी प्रतिज्ञानुसार श्रीहनुमान्जी अर्जुनकी ध्वजामे स्थित हुए और अर्जुनका नाम 'कपिध्वज' हुआ।"

(ख) इस सम्बन्धमे एक कथा यह है।—पाण्डवोंके वनवासके समय एक दिन अर्जुन अकेले एक सरोवरके पास जा निकले। वहाँ श्रीहनुमान्जीसे भेंट हुई। अपने आराध्यदेव का गुणगान करते हुये ज्योंही समुद्रपर सेतुबंधनकी चर्चा

आई, अर्जुनने उन्हें रोककर कहा—'ज्ञात होता है कि त्रेता-में कोई धनुर्धारी न था, बाणोंसे पुल बँध जाता और उसपर सेना यथेच्छा जा सकती थी।' अर्जुन अपने बाण-कौशलके गर्वमें कह तो गए, पर प्रकारान्तरसे यह श्रीरघुनाथजीके परा-क्रमका उपहास हुआ। केशरीकिशोरका मुख रोपसे तमतमा उठा, गरजकर पूछा 'कोई धनुधारी न था! अर्जुन तुम्हारा यह कहनेमें अभिप्राय क्या है? समुद्र तो दूर रहा तुम इस सरोवरपर ही पुल बांध दो और वह मेरा भार सह सके तो मैं जानूँ कि तुम धनुर्धारी हो। उठाओ धनुष, देखूँ तो तुम्हारा पुल।' दोनों भक्तोंमें प्राणकी बाजी लग गई। पुल बँधा। हनुमान्‌जीने अपना विशाल रूप प्रकट किया। अर्जुनका हृदय काँप उठा; आर्त होकर मनही मन उन्होंने अपने सदाके आपत्तियोंके सहायक सखाका स्मरण किया। उनको दृढ़ विश्वास था कि केशव अवश्य मेरी रक्षा करेंगे। भगवान्‌को तो दोनोंकी रक्षा करनी थी, दोनोंमे मित्रता कराकर आगेका काम भी सुगम करना था। बस उन्होंने कच्छपके रूपमें पुलके नीचे अपनी पीठ लगा दी। हनुमान्‌जी पुल पर एक दो पग आगे गये, उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ कि पहला पद धरते ही पुल क्यों न चूर-चूर होगया। उनकी दृष्टि पुलकी ओर गई और जल पर पड़ी। देखा कि जल किसीके अनवरत रक्तस्रोतसे अरुण होता जा रहा है। ध्यानमें उन्होंने देखा कि अर्जुनकी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये प्रभुने मेरा भार वहन किया। वे झट कूदकर किनारे आगए। 'मेरे भारसे प्रभुके मुखसे रुधिर निकला, हा! मैं बड़ा अपराधी हूं'—घोर पश्चातापसे वे विकल होगए, उन्होंने अर्जुनसे कहा—'तुम्हारी भक्तिको धन्य है। प्रभु तुम्हारे लिये इतना कष्ट स्वीकार करते है। मैं अपराधी

हूँ तुमसे हार गया। लो,मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता हूं।' ज्योंही वे नखासे अपने हृदयको फाड़नेको हुए, भगवान्‌ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया। दोनोंमें मित्रता कराई। श्रीहनुमान्‌जी-ने भावी युद्धमें अर्जुनकी ध्वजापर बैठना स्वीकार कर लिया। (आञ्जनेय। 'पार्थसे परिचय' शीर्षकान्तर्गत कथासे। अ० ३५)।

'हनुमच्चरित' में भी यह कथा कुछ हेर-फेरसे है। उसमें एक वार जो पुल बाणोंका बाँधा वह हनुमान्‌जीके कूदते ही टूट गया। अर्जुन भौंचकासे रह गये, मनमे वहुत लज्जित हुए और बोले—'मैं फिर पुल बाँधता हूं, तुम तोड़ दोगे तो मैं जीते-जी अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।' हनुमान्‌जीने भी प्रतिज्ञा की कि 'पुल यदि न टूटा तो मैं भी जीवित चितामें शरीरको भस्म कर दूँगा। दोनोंकी प्रतिज्ञायें जानकर भगवान् विष्णुको चिंता हुई कि दोनोंही मेरे भक्त हैं, किसीकाभी अनिष्ट मैं नहीं देखना चाहता। यह सोचकर वे कच्छपका रूप धारण-कर पुलके नीचे पहुँच गए। हनुमान्‌ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर पुल न टूटा, तब वे पुलसे उतर आये और शरीरको भस्म करनेके लिये चिता बनाकर आग लगाकर उसमें जलने जा रहे थे कि एक ब्राह्मणने उनको रोककर कहा—'जरा ठहरो और मेरी पीठको देखो। दोनोंने देखकर कहा—'अरे यह क्या? लोहू लुहान है 'असंख्य गहरे घाव होगये हैं? आपके शरीर-के किसी दूसरे भागपर तो एकभी घाव नहीं दिखाई देता, और पीठ तो चलनी बन गई!! यह क्या हुआ?' ब्राह्मणने कहा कि 'जरा चलकर पानीको भी तो देखलो।' दोनोंने देखा कि जल लाल होगया है। तब भगवान्‌ने अपना रूप प्रकट कर दिया और कहा—'तुम दोनोंकी प्रतिज्ञाएँ सुनकर मुझे पुलको अपनी पीठपर सँभालना पड़ा, नहीं तो इन बाणोंकी क्या शक्ति

थी जो हनुमान्का भार सह लेते ! मेरे रक्तसे सारा जल लाल हो गया। मैंने दोनोंकी प्रणपूर्तिके लिये ही ऐसा किया। अर्जुन इस प्रकार अपने बलका अभिमान न किया करो।' दोनोंमें मित्रता स्थापित हुई, जिसका परिचय महाभारतके युद्धमें उन्होंने दिया है। यदि हनुमान्जी न सँभालते तो कर्णके बाणोंसे इनका रथ न जाने कहां जा गिरता।

१ (ख) महाभारतमें एक कथा भीमसेनको वरदानकी भी है। गन्धमादन पर्वतपर अपने विराटरूपका दर्शन करानेके बाद श्रीहनुमान्जीने भीमसेनको वर दिया था कि 'जब तुम बाण और शक्तिके आघातसे व्याकुल हुई शत्रुसेनामें घुसकर सिंह-नाद करोगे, उस समय मैं अपनी गर्जनासे तुम्हारे उस सिंहनाद-को और बढ़ा दूँगा।', 'उसके सिवा अर्जुनकी ध्वजापर बैठकर मैं ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जो शत्रुओंके प्राणोंको हरने-वाली होगी, जिससे तुम लोग उन्हें सुगमतासे मार सकोगे।'— 'विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान् मोक्ष्यामि दारुणान्॥ शत्रूणां ये प्राणहराः सुखं येन हनिष्यथ। भा० वा० १५१।१७-१८।'— इस दूसरे वरके अनुसार यह भीषण गर्जना है। 'गाज्यो' से जनाया कि यह गर्जन गाज (बिजली) गिरनेके समान प्राण हरनेवाली थी। अतः सारी सेना दहल गई।—'विद्युत्सम्पात-निनदं' (भा० वन० ४६।७६। अर्थात् उनका गर्जन-तर्जन वज्र-पातकी गड़गड़ाहटके समान था।)

२ (क) 'सुनि कुरुराज दल हलबल भो' के साथ ही 'कह्यो द्रोन भीषम' वाक्य देकर जनाया कि युद्धारम्भके प्रथम दिनमें यह गर्जना हुई थी, जब कि भीष्मपितामह सेनापतिके पद पर अभिषिक्त और द्रोणाचार्य उनके सहायक थे। प्रारम्भमें दोनों सेनाओंमें सिंहनाद-सा गर्जन हुआ भी था। उस समय

भीमसेनने जो गर्जना की थी, वह शंख और दुंदुभियोंके घोष, गजराजोंकी चिंघाड़ तथा सैनिकोंके सिंहनादको भी दबाकर ऊपर उठ गई थी। वह शब्द इन्द्रके वज्रपातके समान भयानक था—'शक्राशनिसमस्वनम्।',—इससे निश्चित होता है कि भीमके सिंहनादमें श्रीहनुमान्‌जीका गर्जन सम्मिलित था।—इस गर्जनाको सुनकर समस्त कौरव सैनिक संत्रस्त हो उठे और वाहन मल-मूत्र करने लगेथे—'तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यस्तव वितत्रसुः।" 'वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।' (भा० भीष्म० ४४।११,१२)। सैनिकों आदिको संत्रस्त और विचलित देख द्रोणाचार्य और भीष्मने सान्त्वना देते हुए ये वचन कहे होंगे। (ख)- 'समीरसुत महावीर' से इन्हें बुद्धि विवेक और बल आदिमे पवनदेवके समान बताया।

३—'वीररस वारिनिधि…'—वीररस (वीरत्व तत्व) को समुद्र कहा। समुद्र जलसे परिपूर्ण रहता है वीररस इनके बलरूप जलसे परिपूर्ण है। 'भाव कि बल और वीरता इन्हींमें परिपूर्ण अपार समुद्रवत् है'—(वै०)। द्रोण-भीष्मजीके कथन-का भाव यह है कि "जैसे सागरकी उपमा सागर ही है, वैसेही 'हनुमान्'की उपमा हनुमानही हैं। इनकी समानताका वीर तीनों लोकोंमें नहीं, इनके बल-वीरताकी थाह कोई पा नहीं सकता। इनके शैशवावस्थाका पराक्रम तुम्हें सुनाता हूँ सो सुनो।"—(मानसमे इन्हें 'वीररस'की उपमा दी, त्रिदेवादिने मूर्त्तिमान् वीररस और वीररसका सार अनुमान किया—(पद ४), और द्रोण-भीष्मने वीररस-सागरको इनके बल-जलसे पूर्ण कहा।—आइ गयो हनुमान जिमि करुना महँ बीररस। ६।६०।,' 'बल कैधौं बीररस…कै सबनि को सार सो' (पद ४।)

४—'भूमि भानु लगि…'—शैशवावस्थामें ही भूखसे

व्याकुल हो उदयकालीन सूर्यको लाल फल समझकर इन्होंने उसे लेनेको साधारण छलाँग मारी, तो एकही छलाँगमें सूर्यके रथके ऊपरी भागमें जा पहुंचे, जहां तक राहु सूर्यको ग्रास क ने के लिये पहुँच चुका था।—(प्रथम इन्होंने राहुका स्पर्श किया)--'अनेन च परामृष्टो राहुः सूर्यरथोपरि। वा० ७३५।३२।' अतः भूमिसे सूर्यतकके बीचके शून्य आकाशमंडलको एक साधारण छलाँगसे कम कहा।

५—'नाइ-नाइ...जोहैं'—हमने इस वाक्यको अर्थ करनेमें दोबार लिया है। एक बार इसको द्रोणाचार्य और भीष्मपितामहका वाक्य माना है, वे कहते हैं कि 'सब आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए दर्शन करें'—यह सुनकर सब 'नाइ...जोहैं'। भगवान्की बड़ी कृपा होती है, तभी भारी सन्तका दर्शन होता है, श्रीहनुमान्जी प्रभुके परमप्यारे भक्त हैं। इनका दर्शन द्वापरमें अपनेको हो गया। अतः अपनेको परम भाग्यवान् मानते हैं।

६—घनाक्षरी

गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई[1] लंक,
निपट निसंक परपुर गलबल भो।
द्रोन सो पहार लियो ख्यालही उखारि कर,
कंदुक ज्यों[2] कपि खेल बेल कैसो फल भो॥
संकट समाज असमंजस में[3] रामराज,
काज जुग पूगनि[4] को करतल पल भो।

---

१ लाइ—ह०, च०। लाय—पं०, छ०। २—ज्यौ—ह०। ३ मैं-ह०। भो—द्वि०, च०। ४ पूंगनि—वै०।

साहसी समत्थ तुलसी को नाह[५] जाकी बाँह,
'लोकपाल[६] नीको फिरि फिरि' थिर थल भो ॥६॥

शब्दार्थ—गोपद=गौके खुरका वह चिह्न जो उसके चलने से पृथ्वीपर पड़ जाता है। गऊके खुरसे बना हुआ गड्ढा। पयोधि=समुद्र। होलिका=होली। लाना=आग लगाना, जलाना; यथा 'कंत बीसलोचन बिलोकिए कुमत फल लंका लाई कपि राँड़की-सी झोपरी। क० ६।२७।' निपट=नितान्त, बिल्कुल। निशंक=निडर। पर=शत्रु। पुर=नगर। गलबल=कोलाहल, हा-हा-कार। द्रोन=द्रोणाचल पर्वत। ख्याल=खेल। कर=हाथ। कंदुक=गेंद। ज्यों=समान, सदृश, की भांति। बेल=बेलका वृक्ष जिसके पत्ते (बेलपत्र) भगवान् शंकरपर चढ़ाए जाते है। तुलसी ग्रन्थावलीमे 'कपिखेल बेल' का अर्थ केवाँच लता किया है। असमंजस=अड़चन, अंडस, कठिनाई, दुबधा। राज=राजा। पूग=समूह। पूगनि (पूजनि)=सपरिबे योग्य, पूरा होनेवाला (ह०, तु० ग्र०)। काज=कार्य, काम। करतल भो=हथेलीमे प्राप्त-सा होगया, मुट्ठीमें आगया, हस्तगत होगया। अर्थात् सहजहीमें होगया। साहसी=हिम्मतवाला; पराक्रमी; निर्भीक, निडर। समत्थ (समर्थ)=सभी कार्य करने की योग्यता या शक्ति रखनेवाला; सामर्थ्यवान्। नाह=स्वामी, नाथ। बाँह=भरोसा; भुजबल। थिर=दृढ़, अचल, स्थाई। थल=(स्थिर होकर बैठनेका) स्थान या ठिकाना। थिर थल

---

५ नाथ--द्वि०। ६ लोकपाल -नीको फिरि-फिरि--ह०, मु०। लोकपालनि को फिर फिर--ज०। लोकपालन पालन को फिरि--छ०, च०, श०,(पालनि)। लोकपाल पालन को फिर--च०, पं०।

भो = स्थिर होकर बैठे। स्थिरतापूर्वक बसानेका स्थान हुईं। (व०)।

पद्यार्थ—समुद्रको गोखुर करके (अर्थात गोपदसे बने हुए गड्ढेके समान समझकर सहजहीमें पार करके) लंकाको नितान्त निडर होकर होलिका सदृश जला डाला, (जिससे) शत्रुके नगरमें हा-हा-कार मच गया। द्रोण-ऐसे पहाड़ (भारी पर्वत) को खेलहीमें उखाड़कर हाथमें गेंदकी भांति लेलिया। वह उनके लिये वैसाही था जैसे बेलके फलसे वानर खेलते हैं। सारी सेना संकटमें थी और राजा रामचन्द्रजी असमंजसमें पड़े थे, उस समय युग समूहका अथवा एक युगमे पूरा होने-वाला काम जिनके द्वारा पलभरमें करतलगत होगया। तुलसी-दासके स्वामी निर्भीक पराक्रमी और सामर्थ्यवान् हैं जिनकी भुजायें लोकपालोंको भलीभांति फिरसे लौटकर स्थिर बसानेका स्थान हुईं।६।

टिप्पणी—१ 'गोपद पयोधि करि०'—श्रीसीताजीने कहा है कि 'तुमने मगर आदि जन्तुओंसे भरे हुये सौ योजन विस्तार वाले महासागरको लाँघते समय उसे गायके खुरके बराबर समझा है, अतः तुम अपने पराक्रमके कारण प्रशंसायोग्य हो। तुम्हारे मनमें रावण जैसे राक्षससे भी न तो भय है और न घबराहट ही।—'शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः। विक्रम-श्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः॥…ते नास्ति संत्रासो रावणा-दपि सम्भ्रमः॥ वा० ५।३६।८-९।'—'गहन दहन निरदहन लंक निःसंक' पद १ (७) देखो।

२ 'होलिका ज्यों लाई लंक०'—'होलिका ज्यों' से जनाया कि लंकाको भस्म करना उनका फाग-खेल था। होलीमें लोग घरसे बल्ले लेकर जाते हैं, ढोल बजाते, गाली गाते, होली

जलाते, शोर-गुल मचाते, नवान्न हरे बूट गेहूं आदिकी बालियाँ होलीमें झुलसाते है, इत्यादि। वैसेही यहाँ घर-घरसे वस्त्र-घी-तेल आया। 'बाजहिं ढोल देहि सब तारी'. 'बाल किलकारी कै कै तारी दै-दै गारी देत, पाछे लोग बाजत निसान ढोल तूर हैं। क० ५।३।' तब हनुमान्‌जीने सारे लंकानगररूपी ईंधनमें आग लगाकर उसमें राक्षसगणरूपी नवान्नकी आहुति दी। गीतावली में इसका रूपक है।—'कानन दलि होरी रचि बनाइ। हठि तेल वसन बालधि बँधाइ॥ लिये ढोल चले सँग लोग लागि। बर-जोर दई चहुँ ओर आगि॥ आखत आहुति किये जातुधान। ५।१६।' लंका भरमें हा-हाकारका आर्तनाद जो उस समय होरहा था;—'तात मातु हा सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा।५।२६।३।', 'नाम लै चिल्लात बिललात अति···। क० ५। १५।', 'देखि ज्वालजाल हा हा-कार दसकंध सुनि···। क० ५।७।' —यही 'गलबल' है। क० ५।३-२४ में जो कोलाहल वर्णित है, वह सब 'गलबल' शब्दसे जना दिया हैं। वाल्मीकिजीने भी लिखा है कि लंकानिवासी दीनभावसे तुमुल नाद करके फूट-फूटकर रोने लगे।···भांति भातिसे विलाप करते हुए उन्होंने बड़ा भयंकर आर्तनाद किया। सबका तुमुल आर्तनाद चारों ओर गूँजने लगा।' (वा० ५।५४।३९-४ ;२४)। यह सब 'गल-बल' है। ['निपट निसंक'—पद १ (७) देखिये और उपर्युक्त टि० १।]

३—'द्रोन सो पहार···'—(क) 'द्रोण-सो' का भाव कि यह पर्वत साठ लाख योजनपर था।,—['लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानां'। ह० न० १३।२०।' सुषेणने बताया है कि यह पर्वत क्षीरसागरमे है- चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे। वा० ६।५०।३१।' इसीको 'महोदय पर्वत' (सर्ग १०१

में) कहा है। वा० ६।७४ में श्रीजाम्बवान्‌जीने बताया है कि हिमालयपर पहुँचनेपर स्वर्णमय पर्वत ऋषभ और कैलास-शिखरके बीचमें औषधियोंका पर्वत है। (श्लोक २६-३१)। क्षीरसागरमें ही द्रोणाचलका होना अध्यात्म० रा० में भी कहा है। हिमाचलकी तराइसे होकर वहाँ जाना होता था। (अ०रा० ६।३५;७।५,३३-३४)।—'शीघ्र गत्वा क्षीरमहोदधिम्। तत्र द्रोण-गिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः। अ० रा० ५।७१--७२।')],—और कई योजनका था। उसकी रक्षा इन्द्रद्वारा नियुक्त एक करोड़ गंधर्व करते थे। बिना इनको जीते औषधि मिल न सकती थी और सूर्योदयके पूर्व ही उसका ले आना अपेक्षित था।—'...हिमरश्मिरुचा रजन्यां जीवत्यसौ द्रुहिणशैलविशल्यवल्ल्या। ह० न० १३।१८।' यह कितना दुष्कर कार्य था। सो इन्होंने बात की बातमें कर डाला। गंधर्वोंको जीता भी और प्रलयकालके सूर्यवत् प्रकाशमान उस पर्वतको ही सहसा उखाड़ लाये।—'जित्वा गन्धर्वकोटिं झटिति ततमणिज्वालमादाय शैलं...। ह० न० १३।३१-३२।', 'देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा। ६।५७।७।', 'सहसा उखार्‌यो है पहार बहु जोजन को रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै। क० ६।५५।' पर्वतको ही उखाड़ लानेका कारण यह था कि पर्वतको उन्होंने प्रथम औषधियोंसे देदीप्यमान देखा, परन्तु वे महौष-धियाँ यह जानकर कि हमें कोई लेने आरहा है, तत्काल अदृश्य होगईं। (वा० ६।७४।६४)।—टि० ४ (ग) भी देखिये।

(ख)—'कर कंदुक ज्यों ...'—यह उठाकर ले चलनेकी उपमा दी। वह उनके लिये गेंद-सरीखा हल्का था। इसे लेकर वे बड़े वेगसे उड़ते चले आये; जैसे बेलके फलके साथ वानर

खेलते हैं। गीतावलीमें भी कहा है—'लियो उठाय कुधर कंदुक ज्यों बेग न जाइ बखानि। ६।८।'

४ (क) 'संकट समाज…'—सारी वानर-सेना इन्द्रजित के इस कार्यसे संकटापन्न थी, सबके नेत्रोंसे अश्रुपात होरहा था, विभीषणजी भी बहुत व्यथित हो विलाप कर रहे थे—(वा० ६। ४६।३०-३१;६।५०।१२-१६), 'प्रभु प्रलाप सुनि कान विकल भए वानर सकल। ६।६०।'

(ख) 'असमंजसमें रामराज'—असमंजस यह था कि मैंने विभीषणको शरणमें लेकर उनको लंकाका राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की-थी, लक्ष्मण इस समर-संकटमे मेरे दाहिने हाथ थे, यदि वे जीवित न हुए तो वीर वानर तो पर्वतोंमें चले जायँगे, और मैं सीता-सहित मर जाऊँगा, परन्तु ये विभीषण कहाँ जायँगे।—'गिरीन्यास्यन्त्यमी वीरास्त्वयि वत्स दिवं गते। मरिष्यामि ससीतोऽहं कः यास्यति विभीषणः। ह० न० १३।६।', 'ह्वै है कहा विभीषणकी गति रही सोच भरि छाती। गी० ६।७।' —मुख्य असमंजस यही था कि माता कौसल्या और सुमित्राके सामने क्या मुँह लेकर जायँगे? वे क्या कहेंगी? मैं क्या उत्तर दूँगा? अतः वहाँ लौटकर जानेका प्रश्न ही नहीं रह गया था। (वा० ६।१०१।१६-१६)।

(ग) 'काज जुग…'—हनुमान्‌जीका यह कर्म देवताओं-के लिये भी अत्यंत दुष्कर था। इतना दुष्कर कार्य अत्यंत अल्प समयमे कर दिखाया। उसे देखकर समस्त वानरयूथपति बड़े विस्मित हुये। सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की। (वा० ६।१०१।४२-४३)। ह० न० १३ मे श्रीहनुमान्‌जीका वाक्य है—'तैलाग्नेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वाऽत्र चैमि।१०।' (तप्त तेलमे सरसों जितनी देरमें जलकर फुलनेका शब्द होता है, उतनेही समयमें

मैं पर्वतको ले आऊँगा)। उनके लिये यह कार्य इतना ही सुगम था। अतः 'करतल पल भो' कहा। पर्वत उखाड़कर लानेमें पल-भर ही लगा।—(कालनेमि और गंधर्वोंका विघ्न आ पड़ा था। फिर अयोध्याजीमें भी गये।—इसीमें कुछ समय लगा था)।

'कम्ब रामायण' में बहुत विस्तृत वर्णन है। जाम्बवान्-जीने हनुमान्‌जीसे कहा—"हे शक्तिशाली! यह जो समुद्र तुम्हारे सम्मुख दीख रहा है उसको बहुत पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाओ। नौ सहस्र योजनकी दूरी पार करके जानेके बाद तुम्हें हिमाचल पर्वत दिखाई देगा। वह दो सहस्र योजन विस्तीर्ण है। उसे भी पीछे छोड़कर आगे बढ़ोगे तो हेमकूट पर्वतपर पहुँचोगे। उस हेमकूट पर्वतसे नौ सहस्र योजन दूरीपर निषद नामक सुन्दर पर्वत है। उस पर्वतसे उतनी ही दूरीपर मेरु पर्वत है। उस (मेरु) की विस्तीर्णता बत्तीस सहस्र योजन है। मेरु पर्वतको पारकर नौ सहस्र योजन जाओगे तो सीधे नीलगिरि नामक पर्वत मिलेगा, जो दो सहस्र योजन विस्तीर्ण है। उससे चार सहस्र योजनपर ओषधिमय पर्वत है।" उस पर्वतपर मृतकको जीवित करनेवाली; शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाँय तो उन्हें पुनः जोड़ने-वाली; शरीरमें गड़े हुए शस्त्रखंडोंको निकालनेवाली और विकृत रूपको यथा पूर्व बनानेवाली—ये चारों ओषधियाँ मिलती हैं।" "ये चारों ओषधियाँ देवोंके द्वारा समुद्रको मथे जाने समय उत्पन्न हुई थीं। देवताओंने उन्हें सुरक्षित रखा है।...अनेक देवता उन ओषधियोंकी रक्षा करते रहते हैं। अनेक चक्रायुध उन ओषधियोंकी रक्षामें लगे रहते हैं और किसीको उनके पास जाने नहीं देते।...अपने कार्यका महत्त्व ठीक-ठीक विचार करके किसीभी उपायसे उन ओषधियोंको ले आओ और हमें बचाओ, अन्यथा सारी सेना मिट जायगी।" वेद-समान हनुमान्‌जीने

कहा कि "यदि इतना ही कार्य पूरा करना है, तो समझ लो कि वे सब लोग अभी जीवित हो उठे ।" (युद्धकांड अध्याय २३, ओषधि पर्वत पटल। अनुवादक—श्री न० वी० राजगोपालन)।

५—'साहसी समत्थ····' इति। समुद्रका लाँघना, लंकाको जलाना और द्रोणाचलको उखाड़कर ले आना, ये सभी काम निर्भीक पूर्ण पराक्रमके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। लंकामें जो पराक्रम इनके देखे गये, उनके संबन्धमें भगवान् श्रीरामजीके वाक्य हैं कि वैसे वीरतापूर्ण कर्म न तो कालके, न इन्द्रके, न भगवान् विष्णुके और न वरुणके ही सुने जाते हैं;—'न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च। कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः। वा० ७।३५।८'—सत्य ही है; यदि ये सब (काल आदि) ऐसे साहसी और समर्थ होते तो लोकपाल क्यों भागे-भागे फिरते ?

६—'जाकी बांह लोकपाल····'—(क) लोकपाल रावणके बन्दी थे, उसका मुख ताकते रहते थे, जो सेवा वह चाहता था वह करनी पड़ती थी; यथा—'इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारिप्रतीहारकं चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान्। पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे। ह० न० ८।२३।' (इन्द्र फूलमाला बनाता है, सूर्य द्वारमें ड्योढ़ीवान है, चंद्रमा छत्र लिये रहता है, पवन और वरुण झाड़ूदार हैं और अग्नि रसोइया है), मृत्युः पादान्तभृत्यः', 'अष्टौ ते लोकपाला मम भयचकिताः पापरेणुं ववन्दुः' (ह० न० ८।१९) अर्थात् मृत्यु मेरे चरण दाबता है। अष्ट लोकपाल भयसे चकित होकर मेरे चरणरजको वन्दना करते हैं। 'आयसु करहिं सकल भयभीता। नावहिं आइ नित चरन विनीता। १।१८२।१३', दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। ६।२८।५।'—इसीको 'वंदीखानेमें होना' कहा है।

—'लोकप जाके बंदीखाना । ६।८६।४।'

(ख)—रावणका सकुल नाश-हुए-बिना लोकपाल बंदीसे छूट न सकते थे। श्रीहनुमान्‌जीकी सहायतासे यह काम हुआ। हनुमान्‌जीने लंकाकी दुर्धर्षता बताकर अंतमें फिर कहा है—किन्तु मैंने सब संक्रमोंको तोड़ डाला, खाइयाँ पाट दीं, लंकाको जला दिया, परकोटोंको धराशायी कर दिया और विशालकाय राक्षसोंकी सेनाका चौथाई भाग नष्ट कर डाला है। अबतो केवल अंगद, द्विविद, मयंद, जाम्बवान्, पनस, नल और नील ही लंका विजय करनेको पर्याप्त हैं, अधिक सेनाकी अपेक्षा नहीं। (वा० ६।३।२६,३१)।

इन्द्रजितने जब ब्रह्मास्त्रद्वारा सारी सेनाको घायलकर धराशायी कर दिया। सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान आदि कोईभी न बचा था। श्रीरामलक्ष्मणजी भी निश्चेष्ट होकर पड़े थे। कौन-कौन जीवित है यह देखते और हनुमान्‌जीको दिखाते हुए जहाँ जाम्बवान् बाणोंसे बिंधे पड़े थे, नेत्र भी खोल न सकते थे, वहाँ पहुंचकर विभीषणजीने उन (जाम्बवान्‌ज) से पूछा कि आपके प्राण निकल तो नहीं गये? उन्होंने स्वरसे विभीषणको पहचान-कर प्रश्न किया–'बताओ कि हनुमान्‌जी कहीं जीवित हैं ?'—'हनूमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित् ।' यह सुनकर विभीषणजीके पूछनेपर कि 'आप दोनों महाराजकुमारोंको छोड़ कर मारुतिको ही क्यों पूछ रहे हैं ?—'आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात् पृच्छसि मारुतिम् ।' आपने न तो अपने राजा सुग्रीव-पर, न अंगदपर और न श्रीराघवपर ही वैसा स्नेह दिखाया है, जैसा पवनपुत्रके प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम लक्षित होरहा है।" उन्होंने उत्तर दिया कि 'यदि वायुके समान वेगशाली और अग्निके समान पराक्रमी हनुमान् जीवित हैं, तो हम सबोंके

जीवित होनेकी आशा की-जासकती है'—'धरते मारुतिस्तात मारुतिप्रतिमो यदि। वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततोभवेत्।' यदि हनुमान्‌के प्राण निकल गये हों, तो हम लोग जीते हुए भी मृतकके तुल्य हैं।"—(वा० ६।७३;६।७४।६,१५–२३), (ह० न० १३।६–८)। फिर हनुमान्‌जीसे उन्होंने कहा कि दोनों भाइयोंके शरीरसे बाणोंको निकालकर उन्हें स्वस्थ करो और तुरन्त द्रोणाचलसे औषध लाकर सारी सेनाको प्राणदान दो। हनुमान्-जीने वैसा ही किया। भगवान् रामने महर्षि अगस्त्यसे स्वयं कहा है कि 'मैंने तो इन्हींके बाहुबलसे विभीषणके लिये लंका, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता,लक्ष्मण, मित्र और बन्धु-जनोंको प्राप्त किया.-'एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः। प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः। वा० ७।३५।६।' अतः लोकपालोंका फिरसे अपने-अपने स्थानोंमें स्थिररूपसे बसना श्रीहनुमान्‌जीके बाँहबलसे कहा गया। वा० ४।४४ में श्रीरामचन्द्रजीके-'अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः। पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व। १७।' (अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारे बल-का आश्रय लिया है। पवनसुत हनुमान् ! जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीता प्राप्त होसके, तुम अपने महान् बल-पराक्रम से वैसाही प्रयत्न करो)—ये वाक्य भी प्रमाण हैं। रावणवध-रूपी कार्यकी सिद्धि इन्हींके बलके आश्रित थी।

कमठ की पीठि[1] जाके गोड़नि की गाड़ैं[2] मानो[3],
नापके भाजन भरि जलनिधि जल भो।

---

१ पीठ--ह०। २ गाड़ै--ह०, ज०। ३ मानौ--छ०।

जातुधान दावन४ परावन को दुर्ग भयो,
महामीन बास५ तिमि तोमनि को थल भो ॥
कुंभकर्न रावन पयोदनाद ईंधन को,
तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो ।
भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान--
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो ॥७

शब्दार्थ—कमठ=कच्छप भगवान । गोड़नि=पैरों । गोड़=पैर। गाड़=गड्ढा, गढ़हा। नापके=नापनेका; किसी वस्तु की लम्बाई–चौड़ाई–गहराई आदि कितनी है यह निश्चित करना 'नापना' है । भरि=पूर्ण । भाजन=पात्र । भरि=पूरा, सब । जलनिधि=समुद्र । जातुधान (यातुधान)=राक्षस । दावन=दमन; नाश। परावन=भगदड़, एकसाथ बहुतसे लोगों-का भागना । दुर्ग=किला । 'तिमि'=सौ योजन (४०० कोस) लम्बी मछली–(ह०) । शब्द सा० में ह्वेल (Whale) इसीको

४–दानव--व० । ५ त्रास--वै० । ☞'त्रास' पाठ उत्तम जँचता है । जैसे 'जातुधानदावनसे भागेहुओंकी रक्षा कही, वैसेही महामीनके डरसे भागकर छिपनेके लिये तिमि समूहके लिये स्थान बन गये । 'बास' और थल दोनों पर्याय हैं। परन्तु हमें यह पाठ अन्यत्र नहीं मिला। अत: हमने 'बास' पाठ ह रक्खा है और बास थल' को एक साथ लेकर 'निवास स्थल' अर्थ किया है । गड्ढे कम से कम दो पैरके दो हुए। वे ऐसे हैं कि एक महामीन उसमें रह सकता है अथवा तिमि समूहका समूह उनमें समा जाय। केवल गड्ढोंकी विशालता और गम्भीरता दिखाई गई । दोनोंके लिये अलग-अलग निवास दिखानेके लिये'त्रास' और 'थल' दो शब्द दिये—यह भी हो सकता है ।

लिखा है। 'तिमि' को भी निगल जानेवाले मत्स्यके आकारके जन्तुका नाम 'तिमिंगिल' है। महामीन' यहाँ 'तिमिंगिल' को कह सकते है। अथवा तिमिंगिलको भी निगल जानेवाला एक और मत्स्य है जिसे 'तिमिंगिलगिल' कहते हैं—इसे महामीन कहा हो †। ह० प्र० ने 'राघव आदिमत्स्य' अर्थ किया है। तोमनि = समूहों, ढेरों। बास थल = निवास स्थान। पयोदनाद = मेघनाद। ईंधन = जलानेकी लकड़ी। प्रवल = प्रचंड, भयंकर। अनल = अग्नि। अनुमान = विचार। सारिखा = सरीखा, सदृश, समान। त्रिकाल = तीनो काल भूत भविष्य वर्तमान। त्रिलोक = तीनों लोक (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल)।

पद्यार्थ—भगवान् कच्छपकी पीठमें पड़े हुये जिनके पैरों-के गड्ढे मानों समुद्र भरके जलको नापनेके पात्र बन गये, राक्षसों द्वारा नाशसे भागकर बचनेके लिये किला हुए (अथवा यों कहें कि) महान् मत्स्य तथा तिमिसमूहके लिए निवासस्थल बन गये। तुलसीदासजो कहते हैं कि कुम्भकर्ण, रावण और मेघनादरूपी ईंधन (को जला डालने के लिये जिनका प्रताप प्रचण्ड अग्नि हुआ। भीष्मपितामहजी कहते है कि मेरे विचारमें (तो उन) हनुमान्जीके समान महान् बलवान् (भूत-भविष्य-वर्तमान) तीनों कालों और तीनों लोकोंमे कोई नहीं हुआ (न होगा और न है)। ७।

टिप्पणी—१ 'कमठ की पीठि ···'—श्रीबैजनाथजी आदि

---

† 'अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः। तिमिंगिलगिलो-ऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः। ह० न० ८।४७।' अर्थात् शतयोजनके विस्तारवाला एक 'तिमि' नामवाला मत्स्य है, उसको निगल जानेवाला एक 'तिमिंगिल' मत्स्य है। राघव मत्स्य तो उसको भी निगल जाता है।

का मत है कि हनुमानजीने समुद्र लांघनेके लिये जब पर्वतपर चढ़कर उसे अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणोंसे दबाया, तब उस दबावसे पृथ्वीको धारण करनेवाले कच्छपभगवानकी पीठपर गड्ढे होगए।—[इसका प्रमाण हमें नहीं मिला। पद ५ (१ ख) मे अर्जुन-हनुमान्-प्रसंगकी कथामें गड्ढाका होना कहा जा सकता है।]

२—'मानो नापके भाजन ' '—'मानो' शब्दसे सूचित किया कि चरणों द्वारा बने हुये गड्ढे बहुत विशाल भारी गहरे थे। उनकी विशालता इन तीन उत्प्रेक्षाओं द्वारा दिखाना-मात्र यहाँ अभिप्रेत है। इतने बड़े गहरे थे कि समुद्र भरका जल उनमें आजाय।

'जातुधान दावन परावन ···'—यह दूसरी उत्प्रेक्षा है। शत्रुसे रक्षाके लिये दुर्ग बनाया जाता है। रावण मेघनाद आदि राक्षस देवताओंका नाश करनेपर उद्यत रहते थे, जिससे देवता भागे-भागे फिरा करते थे।—'सुरपुर नितहि परावन होई', 'रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।' (१।१८०।८; १।१८२।६), 'देखि सबल रिपु जाहिं पराई। १।१८१।६।'—उत्प्रेक्षा करते हैं कि गड्ढे क्या हैं, मानों भागे हुए देवताओंको रक्षाके लिये दुर्ग बना दिया है।

'महामीन वास तिमि तोमनि···'—यह तीसरी उत्प्रेक्षा है। वे गड्ढे इतने विशाल और गहरे थे कि उसमें चारसौ कोस लम्बी मछलियोंके समूहके समूह समा जावे, महामत्स्य भी रह सकें।

३—'कुंभकर्न रावन···' इति। अग्नि ईंधनको जला डालता है। श्रीहनुमानजीका प्रताप कुम्भकर्ण आदिको जला डालनेके लिये प्रचण्डअग्निरूप हुआ। 'बल, पराक्रम आदि

महत्वका ऐसा प्रभाव जिसके कारण उपद्रवी या विरोधी शान्त रहें' प्रताप कहलाता है। श्रीहनुमानजीके कार्योंने लंकाभर पर आतंक छा दिया था कि जिसका दूत ऐसा है वह स्वामी न जाने कितना बलवान् होगा। यथा—'जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आयें पुर कवन भलाई।५।३६।३।', 'तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं चित्रहूँके कपि सों निसाचरु न लागिहैं।', 'तुलसी सयाने जातुधान पछिताने कहैं 'जाको ऐसो दूत सो तो साहेबु अबै आवना।', 'समुझि तुलसीस कपि कर्म घैरु···बसत गढ़ बंक लंकेस नायक अछत लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो।'(क०५।१४,६;६।४)। रावण, मेघनाद और कुम्भकर्ण भी प्रभाव देख सत्रस्त थे। यथा—'उठ्यो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो। बेग जित्यो मारुत प्रताप मारतंड कोटि। क० ५।६।', 'बार बार प्रचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना। ६।५०।४।' (मेघनाद), 'ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो' (अ० रा० ६।११।१२।'—(रावण एक बारके घूँसेसे एक मुहूर्त मूर्च्छित होकर जब सचेत हुआ, तब हनुमान्जीने उसे फिर ललकारा कि अबकी घूँसेसे तेरे प्राण लेलूंगा। रावण भयभीत होकर अन्यत्र चला गया)। कुम्भकर्णपर भी प्रभाव पड़ा, यह उसके "हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमानसे पायक। ६।६२।३।', इन वचनोंसे स्पष्ट है। और युद्धभूमिमें तो प्रत्यक्ष प्रभाव देख भय खा गया था। सुग्रीवपर चलाये हुये उसके शूलको हनुमान्जीने अपने घुटनोंमें लगाकर तोड़ डाला, यह देख वह भयसे थर्रा उठा,—'बभूवाथ परित्रस्तो राक्षसो विमुखोऽभवत्'। उसके मुँहपर उदासी छा-गई। (वा० ६।६७।६५)। इसके पूर्व हनुमान्जीके घूँसेका प्रभाव देख ही चुका था। यथा—'मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः। वा० ६।६७।१८', 'पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो। ६।६४।७', 'कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी। क०

६।४३।' द्रोणाचलको पल भरमें ले आने और मेघनाद तथा रावणके यज्ञ-विध्वंससे इन दोनोंका वध नितान्त सुलभ होगया।—'एहि बीच कपिन्ह बिधंसकृत मख देखि मन महुँ हारई।···चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस। ६।८४।' भय होने पर बल फिर काम नहीं करता; उत्साह नहीं रह जाता। हतोत्साह होनेसे शत्रुको उसका पराजय सुगम होजाता है। श्रीहनुमान्‌जीके प्रभावशाली कार्य कुम्भकर्णादिके शीघ्र और सहज ही नाशके साधन हुए। विनय पद २५ के 'दसकंठ घटकर्ण वारिद-नाद-कदनकारन' से इस भावकी पुष्टि भी होती है। अतः उनके प्रतापको प्रचंड अग्निकी उपमा दी। अनलको 'प्रबल' कहा, क्योंकि इनका प्रभाव प्रलयकालीन महासागर, संवर्तक अग्नि एवं लोकसंहारी कालके समान है।—(वा० ७।३६।४८ में महर्षि अगस्त्यका यह कथन है)।

४—'त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो'—यह अनुमान द्वापरके अन्तमें भीष्मजीने प्रकट किया है। त्रेतायुगमें महर्षि अगस्त्यके वाक्य हैं कि संसारमें पराक्रम, उत्तम बल आदिमें इनसे बढ़कर कोई नहीं। भीष्मजीके समय तक एक पूरा युग बीत गया और परशुरामसे लोहा लेनेवाले भीष्म स्वयं महान् बली हैं। इन्होने भी कोई ऐसा बलवान् नहीं देखा। त्रेताके समय द्वापर भविष्य है। अतः उतने भविष्यकी परीक्षासे आगे भविष्य का अनुमान करके 'त्रिकाल' में न होना कहा।—इससे 'महाबल की सीमा' जनाया। जाम्बवान्‌ने भी इनके बल, बुद्धि, तेज एवं धैर्यको सबसे बढ़कर कहा है—'विशिष्टं सर्वभुतेषु' (वा० ४। ६६।७)।

८ घनाक्षरी

दूत राम राय को सपूत पूत पवन को[१],
अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो।
सीय--सोच--समन दुरित--दोष--दमन,
सरन आये[२] अवन लखन प्रिय प्रान सो ॥
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे[३] को[४] भयो,
प्रगट[५] त्रिलोक[६] ओक तुलसी निधान सो।
ज्ञानगुनवान बलवान सेवा सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो ॥८

शब्दार्थ—राय=राजा । सपूत=वह जो अपने कर्तव्य का पालन करे। =सुयोग्य (व०) । पौन=पवनदेव । अंजनी

---

१ यहाँ 'को' के बाद प्राय: सब पुस्तकोंमें 'तू' है, परन्तु ह०, वै० और मु० में 'तू' नहीं है । मेरी समझमें ह०वाला पाठ ही ठीक है । संबोधित करना न तो पिछले ७ पदोंमें पाया जाता है और न आगे पद १३ तक। पद १४ से संबोधन प्रारम्भ हुआ है । यह वर्णिक छन्द है । इसमें ३१ अक्षरोंका एक चरण होता है । 'पौन को' लिखनेसे एक अक्षरकी कमी पड़ती है । इसीसे अनेक लोगोंने 'तू' पाठ बढ़ा दिया हैं । परन्तु पद्यमे 'पौन' को कहीं-कहीं पिंगलकी विवशताके कारण करना पड़ता है, शुद्ध शब्द तो पवन' है। 'पौन' को 'पवन' कर देनेसे चरणमें अक्षर पूरे हो जाते हैं, 'तु' या 'तू' बढानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती । अत: हमने 'पवन' लिखा है । २--आए--च०, छ० । आये--ह०, ज०, मु०, व०, श० । ३ दलिबे--ह० । ४ कौं--च० । ५ प्रकट--च० । ६ तिलोक--व०, श० ।

= हनुमान्‌जीकी माताका नाम। पुञ्जिकस्थला अप्सरा जो शाप-वश कपियोनिमें वानरराज कुञ्जरकी पुत्री हो केसरीकी यशस्विनी पतिव्रता पत्नी हुई। नन्दन = आनन्द देनेवाले। भूरि = समूह, अगणित। दुरित = पाप; वे पाप जो छिपकर किये जाते हैं। दोष—अकृत्य-करणादिक निषिद्धानुष्ठान 'दोष' हैं। वह मानसिक भाव जो अज्ञानसे उत्पन्न होता है जिसकी प्रेरणासे मनुष्य दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होता है 'दोष' कहलाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि 'दोष' माने गए हैं। (वि० पी० ४८।१ ख)। १३ दोष माने गये हैं—काम, क्रोध, शोक, मोह, विधित्सा, परासुता, मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निन्दा, दोषदृष्टि और कृपणता। (वि० पी० ५६ शब्दार्थ)। दमन = नाशक, नाश करनेवाले। अवन = रक्षा करनेवाले। दुसह (दुःसह) = अत्यन्त कष्टदायक, जिसका सहन करना कठिन है। दरिद्र (दारिद्र्य) = कंगाली, निर्धनता। दरिबे (दलिबे) = दल डालने, नाश करने। ओक = घर; मन्दिर। निधान = खजाना गड़ा हुआ खजाना। = परिपूर्ण धन (ज०)। = द्रव्यके पात्र (ह०)। सावधान = चौकस, सजग, सतर्क। आनना (आनयन) = लाना। आनु = ले आओ, धारण करो। सुजान = विज्ञ; हृदयकी जाननेवाले; यथा 'स्वामि सुजानु जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की। २।३१४।३।'

पदार्थ—जो श्रीरामचन्द्रजी महाराजके दूत, पवनदेवके सपूतपुत्र, श्रीअंजनीमाताको आनन्द देनेवाले और अगणित सूर्योंके समान प्रतापवाले, श्रीसीताजीके शोकका नाश करनेवाले, पापों और दोषोंके नाशक, शरणमें आए-हुए की रक्षा करनेवाले और श्रीलक्ष्मणजीको प्राणोंके समान प्रिय हैं। तुलसीदास ! रावणरूप दुसह दारिद्र्यका नाश करनेके लिये त्रैलोक्य

रूपी घरमें जो खजाना (धनराशि) सरीखा प्रकट हुए हैं, उन गुणवान् बलवान, सेवामें सावधान, सुजान स्वामी श्रीहनुमान्जीको अपने हृदयमें धारण करो। ८।

टिप्पणी १—'दूत रामरायको' अर्थात् जो अनायासही महान् पराक्रम करनेवाले हैं कोसलाधिपति हैं (—'कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः), अमित तेजस्वीहैं, जो चराचर प्राणियों सहित संपूर्णलोकोंका संहार करके पुनः उनका निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं, उनके दूत हैं,—'दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।' (वा० सु० ४२।३४, ५०।१६, ५१।३६—ये सब हनुमान्जीकेही वाक्य हैं)। मानसमें ' ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया। '। ५।२१।४-६।', यह जो कहकर 'तासु दूत मैं" कहा है वह सब भी 'रामरायको', शब्दोंसे जना दिया।

२—'सपूत पूत पवनको अंजनीको नंदन'—धैर्यवान् , महातेजस्वी, महाबली महापराक्रमी तथा छलाँग मारनेकी गतिमें ये अपने पितासेभी बढ़कर हुए। इनमे तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये सद्गुण सदा विद्यमान् रहते है। (वा०६।१२८।८२, ७।३५।३।) । श्रीसीताजीने स्वयंभी कहा है—श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः।' तुम वायुके प्रशंसनीय पुत्र हो। (वा० ६। ११३।२७)। 'प्रशंसनीय' मे 'सपूत' का भाव है। बापसे बढ़कर गुणोंवाले होनेसे बापकी कीर्ति बढ़ानेवाले होनेसेभी 'सपूत' कहे गए। पुनः, यहाँ 'सपूत' कहकर जनाया कि इनको जन्म देनेसे अंजनादेवी उत्तमपुत्रकी जननी और वायुदेव श्रेष्ठ पुत्रके जनक माने जाते हैं,—'अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत। हनूमान् वानरश्रेष्ठः···।' (वा०६।७४।१८।;ह०न० १३।६)।

पवनदेवके समान तेजस्वी महाबली महापराक्रमी पुत्र होगा, यह जानकर माता आनंदित हुई थी,—'ततस्तुष्टा जननी ते' (वा॰ ४।६६।२०), और इनको जन्म देनेपर तो साक्षात् ये गुण देखे तब तो आनंदका कहना ही क्या ? माताके आज्ञाकारी भी हैं।–'जयति मरुदंजनामोदमंदिर । वि॰ २७।' 'सपूत पूत पवनको' कहकर 'अंजनीको नंदन' कहनेका भाव कि पवनदेवने ऐसा पुत्र देकर उनको आनंद दिया।

३–'प्रताप भूरि भानु सो'—प्रतापकी उपमा सूर्यसे दी जाती है—'प्रताप दिनेस से' (क॰ ७।४३)। परन्तु इनका प्रताप अगणित सूर्यके समान है—'बेग जीत्यो मारुत प्रताप मारतंड कोटि। क॰ ५ । ६ ।' पद ७ (३) भी देखिये।

४–'सरन आये अवन'—जो शरणमें आवे उसकी रक्षा तो करते ही हैं, इतना ही नहीं, इनका सिद्धान्तही है कि शरणागत व्यक्तिको तिरस्कृत करना धर्म नहीं है। सेनाध्यक्ष सुग्रीव आदि सभीने विभीषणको शरणमें लेनेका विरोध किया, एकमात्र श्रीहनुमान्‌जीनेही शरणागतका त्याग न करनेकी सलाह दी।—'खोटो खरो सभीत पालिये सो सनेह सनमान सों। गी॰ ५। ३३।'—किष्किन्धामें श्रीरामजीसे प्रथम भेंट होनेपर उन्होंने शरणागतको अभयदान देनेका महत्व इस प्रकार कहा है - "धार्मिक व्यक्ति इस विशाल संसारके सब लोगोंके सभी अभीष्ट पदार्थोंका दान देते हुए यज्ञ करते हैं तथा अन्य (तप आदि) कार्य भी करते हैं, इस प्रकार वे अनादि धर्मको स्थिर रखतेहै। किन्तु, किसी ऐसे व्यक्तिको, जो मारनेके लिये यमके समान आये हुए अपने कुल-शत्रुसे डरकर, शरणमें आया हो उसको अभयदान देनेसेभी श्रेष्ठ धर्म और कोई हो सकता है ?"—(कंब रा॰ 'हनुमान् पटल'।)

'शरण आये अवन' इति। शरणागतकी रक्षाके लिये एक बार स्वामीसे युद्धभी किया है, ऐसे शरणपाल हैं। कथा इस प्रकार है—शकुन्त नामक एक राजा एकबार वनमें भटकता हुआ एक आश्रममें जा पहुँचा जहां बहुतसे ऋषि एकत्रित थे। उसने सबोंको प्रणाम किया, किन्तु महर्षि विश्वामित्रको क्षत्रिय मानकर उन्हें प्रणाम नहीं किया। विश्वामित्रजी एक क्षत्रिय द्वारा अपना अपमान देख मनमें बहुत क्रुद्ध हो, श्रीरघुनाथजीके दरबारमें पहुँचे। अर्घ्य पाद्य आदि द्वारा सत्कार हो चुकने पर उन्होंने कहा:—मैंने आपको विविध अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग सिखलाया, इस नाते मैं तुम्हारा गुरु हूँ। आज मैं गुरुदक्षिणा लेने आया हूँ। मेरी इच्छाको पूर्ण करनेका वचन दीजिये। वचन देनेपर उन्होंने कहा,—शकुन्तने बहुत छोटे-छोटे ऋषियोंको प्रणाम किया। किन्तु मेरे विषयमें यह कहकर कि मैं क्षत्रियको सिर नहीं झुकाता। यह ऋषि हो गया तो क्या ? वास्तवमें तो क्षत्रिय है न ?...' मेरा अपमान किया। आप उसे दण्ड दें। यह सुनकर राघवने प्रतिज्ञा की कि 'कल सूर्यास्तके पहले मैं उसका वध न करदूँ तो मुझे गोहत्या, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या और स्त्रीहत्याका पाप हो...।'

प्रतिज्ञाका पता शकुन्तको लगा। दैवयोगसे नारदजी मिल गए, उसका दुखड़ा सुनकर वे उसे अंजनीके पास लेगए। उसने देवीको प्रणाम किया। देवीने उसके मस्तकपर हाथ रख अभय किया। पीछे यह जाननेपर कि वह श्रीरामजीका अपराधी है अंजनीको अत्यंत दुःख हुआ।

श्रीहनुमान्‌जी माताका चरण छूनेके लिये आया करते थे, उस दिन जब वे आये तो माताको कुछ उदास एवं खिन्न मन पाया। माताकी यह दशा देख उन्होंने कहा—'माता आज

आप उदास क्यों हैं ? आप मुझे आज्ञा दें, जिस प्रकार आप प्रसन्न होंगी वही मैं करूंगा।' माताने सब बात कह सुनाई। कुछ देरके लिए वे चिन्तामग्न होगए। थोड़ी देर बाद उन्होंने एक ठंडी सांस ली और बोले,—'माता ! तूने जिसे अभय दिया है, उसकी रक्षाके लिए मैं अवश्य ही श्रीरामजीसे युद्ध करूंगा। तू प्रसन्न हो।' यह कहकर उन्होंने शकुन्तको बुलाकर अपने आश्रममें रखा।

प्रातःकाल श्रीरामजी शकुन्तके राज्यमें गये, तो उसे वहाँ नहीं पाया। इतनेहीमें श्रीनारदजीने आकर उसके श्रीहनुमान्‌जी-की शरणमें जानेका सम्वाद सुनाया। श्रीराघव वहाँ पहुँचे और उनसे बताया कि 'मैंने इसे सूर्यास्तके पहले ही मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है', तुम इसे छोड़ दो। श्रीहनुमान्‌जीने चरणोंको छूकर कहा—"स्वामिन् ! मुझे मालूम है कि यह महाराजका अपराधी है। परन्तु यह माताके शरणागत हुआ और वे उसे अभय वर दे चुकी हैं। अतः मैं इसकी रक्षाके लिए विवश हूँ। मुझे क्षमा कीजिये, मैं इसे छोड़नेमें परतंत्र हूँ।"

युद्ध छिड़ गया। स्वामी-सेवक-युद्ध देखनेकी इच्छासे विधि शंकर इन्द्र आदि देवता तथा श्रीवसिष्ठ, विश्वामित्र आदि अनेक ऋषि, वहाँ आ पहुँचे थे। दोनोंका बड़ा भयानक युद्ध हुआ। लड़ते-लड़ते सूर्यास्त हो गया।···इसी बीचमें श्रीशंकर, ब्रह्मा और नारद आदि ऋषियोंने बीचमें पड़कर शकुन्तको समझाया। उसने विश्वामित्रको प्रणामकर अपने अपराधोंकी क्षमा चाही। विश्वामित्रजीने उसे क्षमा कर दिया। इस प्रकार यह झगड़ा निबटा। श्रीआञ्जनेयजीका शरणागतकी रक्षाका प्रण भी पूर्ण हो गया।—('हनुमच्चरित' पृष्ठ १२५-१३०)❀

❀श्रीअयोध्याजीसे प्रकाशित 'श्रीअंजनीकुमार' नाटकमें कथा इस

५—'लखन प्रिय प्रान सो'—श्रीसीताजीका दर्शनकर उनका समाचार सुनाया यह उनके प्रियत्वका एक सर्वप्रथम बड़ा भारी कारण हुआ। क्योंकि इनको बड़ा कलंक लगा था—'जनकसुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥ ३।३०।२।' माताका हरण हमारेही कारण हुआ, यह बड़ी ग्लानि थी।—'हेतु हौं सिय हरन को' (गी० ७।३१)। अतः समाचार पाकर बड़ा हर्ष हुआ।—रामो हर्षमाप सलक्षणः।' (वा० ५। ६४।४), 'जयति जानकी सोच-संताप-मोचन रामलक्ष्मणानन्द-वारिजविकासी।' वि०२६। 'श्रीलक्ष्मणजी जन्मसे ही श्रीरामसेवा में अनुरक्त रहे और रामकीर्तिपताकाको फहरानेवाले हुये। यथा—'बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी। १।१९८।३', 'रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयेउ जस जाका। १।१७।६।' इन्होंने कभी साथ नहीं

---

*प्रकार है। गंधर्वराज अश्वसेनने महर्षि दुर्वासाको प्रणाम नहीं किया। इस पर चिढकर महर्षिने श्रीरामचन्द्रजीके दरबारमें फरियाद की। श्रीरामजीने सायंकाल तक उसका मस्तक महर्षिके चरणोंमें गिरानेकी प्रतिज्ञा की। श्रीनारदजीके परामर्शसे अश्वसेनने श्रीअंजनीजीसे प्राणोंकी भिक्षा ली। माताकी आज्ञासे हनुमानूजीने रक्षाकी व्यवस्था की। अपनी पूँछका अभेद्य दुर्ग बनाकर उसमें अश्वसेनको बिठाकर उसे आकाशमंडलमें छिपा दिया। युद्ध छिड़ गया। श्रीराम ज्योंही ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करनेको उद्यत हुए, महर्षि और नारद दोनों प्रकट होगये और ब्रह्मास्त्रके प्रयोगको रोकने की प्रार्थना की और उधर हनुमानूजीसे अश्वसेनको नीचे उतारनेको कहा। नीचे उतारनेपर नारदजीने उससे महर्षि दुर्वासाके चरणोंपर मस्तक रखकर अपराध क्षमा करानेकी आज्ञा दी। उसने वैसा ही किया। दोनोंकी प्रतिज्ञा पूरी हुई।

छोड़ा। वैसेही श्रीहनुमान्‌जीने अपने किये हुये कर्मोंसे श्रीराम-संग्रामको कीर्तिका स्मरक बनाया और उनकी कीर्तिके फैलाने-वाले हुये। यथा '...बिहितक्रांत रामसंग्राम साका। पुष्पकारूढ़ सौमित्र सीतासहित भानुकुलभानु-कीरति पताका। वि० ३६।' ये जबसे रामदूत बने तबसे बराबर साथ रहे। श्रीरघुनाथजीने प्रथम भेंटपर ही कहा था—'तै मम प्रिय लछिमन ते दूना।'—अपने स्वामीके परम प्रिय सेवक और स्वामीकी कीर्तिपताका फहरानेवाले होनेसे भी प्राण समान प्रिय हैं। संजीवनी लाकर जिलानेसे लक्ष्मणजीको हर्ष हुआ हो, ऐसा उल्लेख कहीं मिला नहीं। उन्हें तो अपने जीने-मरनेकी पर्वाह कहाँ? उन्होंने तो श्रीरामजीसे कहा था कि आपको मेरे लिये निराश नहीं होना चाहिये था,—'नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ। वा० ६।१०१।५३।'

६ 'दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे...'—दारिद्र्य समान दुःख नहीं;—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। ७।१२१।१३।' अतः उसे 'दुसह' कहा। रावणने तीनों लोकोंको दुसह दुःख दिया था। यथा 'दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं। गी० ७।१३।' अतः 'दुसह दरिद्र'-रूप कहा। दरिद्रको खजाना मिल जाय तो दारिद्र्यका नाश होजाता है। अतः हनुमान्‌जीको 'निधान' कहा। इनके प्रादुर्भावसे तीनों लोक सुखी हुये।

७ 'ज्ञान गुनवान...' इति। 'श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परम धार्मिकः। बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम्॥ तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः। एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः।' (वा० ६।११३।२७-२८। श्रीसीता-जी हनुमान्‌जीसे कहती हैं—) तुम पवनदेवके प्रशंसनीय पुत्र

हो। परम धर्मात्मा हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुतसे गुण केवल तुम्हींमें एक साथ विद्यमान हैं इसमें संशय नहीं। पद ४ (३,५), ३ (५), ५ (३), ७ (४) और उपर्युक्त टि० २ देखिये।

८ 'सेवा सावधान'—सेवाके ३२ अपराध कहे गये हैं, वे न होने पावें, स्वामी द्वारा प्रतिष्ठा पानेसे कहीं अभिमान न हो जाय, इत्यादिमें सतर्क रहते हैं, यथा '…पाइ पति ते सनेह सावधान रहत डरत। साहिब सेवक रीति प्रीति परमिति नेमको निबाह एक टेक न टरत। वि० २५१।' 'साहेब सुजान' अर्थात् हृदयकी रुचिको जान लेते हैं, कहे बिना ही मनकी रुचिको पूरा कर देते हैं, अतः उन्हें हृदयमें धारण कर। [अर्थान्तर–'साहेब सुजान श्रीरामजीकी सेवामें सावधान'—(ह०)। 'सेवा (दूसरों को आराम पहुंचाने) में सजग…' (व०)। अपने भक्तोंके सुधि-कर्ता (मु०)]

६—घनाक्षरी

दवन दुवन दल भुवन बिदित बल,
बेद जस[1] गावत बिबुध बंदीछोर को।
पाप ताप तिमिर तुहिन बिघटन पटु,
सेवक सरोरुह सुखद भानु भोर को॥
लोक परलोक तें[2] बिसोक सपने न सोक,
तुलसी के हिय[3] है भरोसो एक ओर[4] को।

१ जसु–ह०। यश--पं०। २ तें--ह०, च० व०, पं०। ते--छ०, श०।
३ हिय--ह०। मु०। हिए--छ०, च०। हिये--पं०, श०। ४ वोर–ह०।

राम को दुलारो दास बामदेव को निवास,
नाम कलि कामतरु केसरी किसोर को ॥६

शब्दार्थ—दुवन = राक्षस; दुर्जन; शत्रु। भुवन = चौदहों लोकोंमें। बिदित = प्रसिद्ध, विख्यात। जस = यश। बिबुध = देवता। बंदीछोर = कैद (बंधन) से छुड़ानेवाले। तिमिर = अंधकार। तुहिन = पाला, कुहरा। बिघटन = विनाश करनेमें। पटु = निपुण, प्रवीण, कुशल। सरोरुह = कमल। भोर = सवेरे; प्रातःकाल। भोर को = उदयकालीन। परलोक = लोक जो मरने पर प्राप्त हो। विशोक = विशेष शोकरहित; निश्चिन्त। ओर = तरफ, पक्ष। दुलारो = प्यारा, लाड़ला। वामदेव = श्रीशिवजी। निवास = स्वरूप, महाशम्भुके अवतार। (ह० । टि० ५ देखिए। कामतरु = कल्पवृक्ष। केसरीकिशोर = केसरी वानरके पुत्र; केसरी-कुमार।

पद्यार्थ—राक्षस-दलका नाश करनेवाले, चौदहों लोकोंमें जिनका बल विख्यात है, देवताओंको (रावणके) बंधनसे छुड़ानेवाले (हनुमान्‌जी) का यश वेद गाते हैं। पापरूपी अंधकार और तीनों-तापोंरूपी पालेका विनाश करनेमें जो परम कुशल हैं, सेवकरूपी कमलको सुख देने (प्रफुल्लित करने) में प्रातःकालके सूर्य (के समान) हैं। श्रीरामजीके दुलारे दास, वामदेवके स्वरूप, केसरीकिशोर (जिन) का नाम कलिकालमें कल्पवृक्ष है, तुलसीदासके हृदयमें एक (उन्हींकी) ओरका भरोसा है, (अतः वह) लोक और परलोक (दोनोंकी ओर) से निश्चिन्त है, स्वप्नमें भी शोक नहीं है।६।

टिप्पणी—१ 'भुवन बिदित बल···'—पद ३ 'पंचमुख छमुख···बेद बंदी बदत', 'बल कैधौं बीररस···' पद ४ (लोक-

पाल और त्रिदेवका अनुमान '; पद ५ 'बारस बारिनिधि जाको बल जल भो' (द्रोण भीष्म वाक्य); पद ७ 'हनुमान सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो'-देखिये। 'बिबुध बंदी-छोर' पद ६ (६) देखिये। वेद यश गाते हैं। [प्रमाण जो चाहते हों वे—ऋग्वेद मडल १० सूक्त २८ मंत्र ८, ६, १०, ऋग् मंडल १० सूक्त ५३ मन्त्र ७; मं० १० सूक्त ८७ मन्त्र १. २, ६, १२; मं० ६ सू० ७२ मन्त्र १; अथर्व वेद कांड ८ सूक्त ३ मन्त्र १, २, ५; कांड ७ सू० ७१ मन्त्र १ और शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनीये वाजसनेय स० अध्याय ११ मन्त्र २६ देखें। (वे० भू० पं० रामकुमारदासजी)]

२ 'पाप ताप…बिघटन पटु' कहकर सेवक…भानुभोर-को' कहनेका भाव कि जो सेवक है, उनके पापों और पापजनित दुःखोंका वे अनायास नाश करके उनको सुख देते हैं, जैसे सूर्य उदय होकर अंधकार और पालेका नाश करके कमलोंको प्रफु-ल्लित करते हैं।

३—'लोक परलोक तें बिसोक…'--इससे जनाया कि जो हनुमान्‌जीका अनन्यगतिक है उसके लोक-परलोक दोनों बने बनाये हैं। पद १३ में भी कहा है-'लोक परलोकको बिसोक सो'।

४—'दुलारो दास'—पुत्र सबसे प्यारा होता है। श्रीसीता-जीने इन्हें पुत्र माना, यथा-'हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना।', 'सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी।' (५।१६।६,५।१७।८) और आशीर्वाद भी दिया—'अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू। ५।१७।३।' श्री-सीता-समाचार पानेपर श्रीरघुनाथजीने भी 'सुत' माना —'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। ५।३२।७।' और देखिये, प्रथम भेंटपर ही इनको 'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। ४।३।७।' कहा था। सेवा करनेपर तो ऐसे रीझ गये कि उनको भरत-समान प्रिय

बना लिया, (यथा—'सेवा केहि रीझि राम किये सरिस भरत। वि० १३४।') और अयोध्यामें तो 'सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना' कहा है। सब विदा कर दिये गये, पर ये सदा साथ रहे। इनकी सेवासे श्रीरामजी इनके हाथ बिक गये। यथा 'साँचो सेवकाई हनुमानकी सुजानराय रिनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू। क० ७।१६।' देखिये वे दुलारे ऐसे हैं कि आज भी वे मन्दिरोंमें सर्वत्र श्रीसीतारामजीके साथ पूजे जाते हैं। कोई भी उनको प्रभुकी सेवासे पृथक् करनेमें समर्थ नहीं, उनकी कृपा बिना किसीको प्रभुकी सेवाका सौभाग्य कदापि नहीं मिल सकता।

श्रीरघुनाथजीने जब अपने दिव्य वपुको अनुचरोंके साथ सामान्य लोगोंकी दृष्टिसे अव्यक्त करना चाहा, तब यह विचार कर, कि यहाँके भूले प्राणियोको, जिनकी उस अव्यक्त जगत्में गति ही नही है, कोई ऐसा आश्रय चाहिये जिसे वे आर्त होकर पुकार सकें और जिसके आधारसे वे श्रीचरणों तक पहुँच सके, श्रीहनुमान्जीको ही अपना प्रतिनिधि होने योग्य समझा। इन्हीं-मे अपार दया, अनन्त करुणा, अपनेसे अधिक शरणागत-वत्सलता, सारे जगत्की रक्षाकी क्षमता और भक्तोंके विघ्न एवं संकटोंके नाश करनेकी शक्ति आदि प्रतिनिधिके समस्त अपेक्षित गुण देखकर इनको यहीं अजर-अमर होकर रहने और भक्तोंकी रक्षा करनेकी आज्ञा दी*। प्रभुने कहा कि तुम जानते हो कि

* कम्बजी लिखते हैं कि प्रथम भेंटपर ही श्रीरघुनाथजीने जान लिया था कि 'इस [हनुमान्] से उत्तम और कोई नहीं है। पराक्रम शास्त्रसंपत्ति, ज्ञान तथा अन्य सभी गुण इसमें अभिन्न रूपमें वर्तमान हैं।' फिर उन्होंने लक्ष्मणजीसे कहा है—'मुझे निश्चित रूपसे ज्ञात हो रहा है कि यह सर्वलोकोंके लिये आधार बन सके, ऐसे पराक्रम अत्यधिक महिमा से सपन्न है…'।

भक्त मुझे कितने प्रिय हैं, उनकी रक्षाका भार आजसे तुम्हें सौंपता हूँ। यह मेरा प्रिय कार्य तुम करो।

५ 'वामदेवको निवास'—अर्थात् इस कपि-शरीरमें साक्षात् शंकरजी ही है। आगे पद १४ मे 'वामदेव रूप' और ३४ में 'भोरानाथ' भी इन्हींको कहा है। शंकरजी अपने रूपसे मर्यादापुरुषोत्तमकी सेवा न कर सकते थे, अतएव उन्होंने ग्यारहवें रुद्ररूपको वानररूपमें अवतरित किया।—'रुद्र देह तजि नेह बस वानर भे हनुमान।' 'जानि रामसेवा सरस...हर तें भे हनुमान।' (दो० १४२; १४३)। तुष्ट. पिनाकी दशभिः शिरोभिस्तुष्टो न चैकादशमो हि रुद्रः। अतो हनुमान्दहतीति...। ह० न० ६ २७।' (रावण सोचता है कि मैने दश शिरोंसे शिवजीको तृप्त कर दिया। बस एक ग्यारहवें रुद्र तृप्त न हुए, इसीसे हनुमान् लंकाको जला रहे है); 'रुद्रावतारो यं मारुति.' (ह० न० ६।२ जाम्बवान् वाक्य), 'वानराकार विग्रह पुरारी' (वि० २७)।

शिव महापुराण तृतीय शतरुद्रसंहिता अ० २० में वामदेव किस प्रकार वानर हनुमान् हुये यह कथा है। (भगवान्नें समुद्रमंथनसे निकले हुए अमृतको बाँटनेके लिए असुरोंको मोहित करनेवाला 'मोहिनी' रूप धारण किया था। शिवजीको उस मोहिनी (स्त्री) रूपके दर्शनकी लालसा हुई। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की। भगवान्ने 'एवमस्तु' कहा। मोहिनीरूपका दर्शन होते ही वे अपनेको न सँभाल सके। वे उन्मत्तकी भांति उसकी ओर दौड़े। जहाँ-जहाँ मोहिनी जाती, शंकरजी उसके पीछे दौड़ते जारहे थे। दौड़ते हुये श्रीशंकरका रेत स्खलित हुआ। कामका आवेश शान्त हुआ और उन्हें अपनी परिस्थितिका ध्यान आया।)—नन्दीश्वरजी कहते हैं कि मोहिनीको देखकर शंकरजीने कामसे व्याकुल हो श्रीरामचन्द्रजीके लिए अपना वीर्य

गिराया। शिवजीकी प्रेरणासे सप्तर्षियोंने उस वीर्यको पत्तेपर स्थापित किया और उसे गौतमकी पुत्रीमें कर्णके द्वारा तथा अंजनीमें श्रीरामजीके कार्यार्थ प्रवेश किया। यथा 'तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते। प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात्।५। तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः। कर्णद्वारा तथांजन्यां रामकार्यार्थमाहितम्।६।' उस वीर्यसे महाबली तथा पराक्रमयुक्त वानर शरीरवाले हनुमान् नामक शिवजी उत्पन्न हुये।—'ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्। शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः।७।'—अत. हनुमान्जीको 'वामदेवको निवास', 'वामदेवरूप' एवं 'भोरानाथ' कहा गया है। (श्लोक १४ में 'हरांशजः' और २४ में 'महादेवांशजः कपिः' तथा ३२ मे 'महादेवात्मजः प्रभुः' शब्द आये हैं। श्लोक १ मे कहा है कि हनुमान्जीके रूपसे शिवजीने श्रीरामजीकी प्रीतिके कारण उनके परम हितके लिये यह लीला की है)।❀

❀श्रीसुदर्शनसिंह चक्र' लिखते हैं कि रेतःपातके-साथ ही वायुने उसे ग्रहण कर लिया। वायुमें उड़कर, वायुके द्वारा ही वह कांचनगिरि नाम के पर्वत तक गया।...माता अंजना शृङ्गार किये पर्वतशिखरपर बैठी थी।...वायु कुछ वेगसे चलने लगा, सतीका वस्त्र उड़ रहा था। उन्होंने वस्त्रोंके उड़ानेमे वायुकी वासन का अनुभव किया। शाप देनेको उद्यत हुई।...वायुने भगवान् शंकरके उड़ाकर लाये हुए वीर्यको वस्त्रोंकी ओर ध्यान दिलाकर कर्णोंके मार्गसे माताके उदरमें पहुँचा दिया।...माता को क्रोधित देख वायु स्वरूपधारी हो प्रकट हुए और प्रार्थना की—आप मुझपर क्रोध न करें, मेरा कोई अपराध नहीं। आपने पुत्रकी इच्छा की थी, भगवान् शंकरका वीर्य आपतक पहुँचानेको ही मैंने ऐसी चेष्टा की थी।...''।—[कहाँसे यह कथा ली इसका पता नहीं]--['आञ्जनेय अ० २']।

कम्ब रामायण बालकाण्ड अ० ५ शुभावतार पटलमें देवताओंके

६ 'नाम कलि कामतरु···' अर्थात् इनका नाम समस्त कामनाओंका देनेवाला है। यथा—'भगत कामतरु नाम···' (विनय० ३१)। पद १४ में भी ऐसाही कहा है.—'बामदेवरूप भूप रामके सनेही, नाम लेत देत अर्थ-धर्म-काम-निरबान हौ।" —दोनोंमे सूक्ष्म भेद है। यहाँ गोस्वामीजी उनके ये गुण बता रहे हैं और वहाँ श्रीहनुमान्‌जीको सम्बोधितकर उनसे कहते हैं कि आपमे ये गुण है। यहां प्रथम 'रामको दुलारो दास' कहा तब 'वामदेवको निवास' और वहां प्रथम 'वामदेव रूप' तब 'भूप रामके सनेही'।

७ 'एक ओरका भरोसा है' कहकर यह बताते हैं कि वह भरोसा क्या है।—'रामको···'। 'नाम कलिकामतरु'—कलिमें नामको कामतरु कहकर वे गुण आपके नाममे जना दिये, जो विनयके पद १५६, ६७ आदि में कहे हैं। अर्थात् केसरीकिशोर का नाम 'दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर वन घाम को।' है और 'भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललामको।';

वानररूपसे अवतार लेनेके सम्बन्धमें लिखा है—"वायुदेवने कहा कि मारुति मेरा अंश है,···शिवजीने भी वायुके अंशभूत हनुमान्‌को ही अपना अंश बताया।"

वृहद् ब्रह्म संहिता, तृतीय पाद अ०१ में भी कहा है कि 'श्रीरामजीकी सेवाके लिए महाशम्भु वानर रूप धरकर अंजनीके गर्भसे प्रगट होकर श्रीहनुमान्‌जो कहलाये। ऐसे श्रीरामजीके दिव्य गुणोंके पुंज तथा महाविष्णु स्वरूप मूर्तिमान वासुदेव ही घनीभूत सदाशिवके तेजसमूह श्रीहनुमान्‌जी हैं।'—'भूय: शम्भुर्हरेः प्रीत्यै वानरं रूपमुद्वहन्। अंजनीगर्भसम्भूतो आंजनेयो वभूव स। ११४। राघवस्य गुणो दिव्यो महाविष्णु स्वरूपवान्। वासुदेवो घनीभूतो तनुतेजो महाशिवः।११५।'

अतः मैं लोक परलोकसे निश्चिन्त हूँ, पाप ताप (घोर घन घाम) का भी भय नहीं। यथा 'बैठे नाम कामतरु-तर डर कौन घोर घन घाम को ?' (वि० १५५)। जैसे यहां 'रामको दुलारो दास' कहकर इनके नामकी महिमा कही, वैसे ही वि० १३४ में 'सेवा केहि रीझि राम किये सरिस भरत।...' कहकर 'ताको लिये नाम राम सबको सुढर ढरत' कहा गया है। दुलारे दास होनेसे वामदेवको काशीक्षेत्रमें जीवोंको मुक्ति देनेका अधिकार मिला और हनुमान्‌रूपमें उनके नामको कामतरु बनादिया इनका नाम सर्वत्र सबकी कामनाओं एवं मुक्तिका देनेवाला है।

८ 'केसरीकिसोर'—इससे जनाया कि जो महाकपि केसरीके समान बलवान् हैं। कथा इस प्रकार है— केसरीका निवासस्थान माल्यवान् पर्वत है। एक दिन वे गोकर्णपर्वतपर गये। गोकर्णतीर्थमें देवर्षियोंकी प्रेरणासे उन्होंने शम्बसादन नामक दैत्यका संहार किया था। उन्हीं महाकपि केसरीकी स्त्री के गर्भसे वायुदेवद्वारा श्रीहनुमान्‌जीका जन्म हुआ (वा० ५।३५। ८१-८३)।

१०—घनाक्षरी

महाबलसींवँ[1] महाभीम महाबानइत[2],
महाबीर बिदित बरायो रघुबीर को।
कुलिस कठोर तन[3] जोर परै रोर रन,
करुना कलित मन धारमिक धीर को॥

१ सीम--व०, श० । सींवँ--ह० । सींव--ज०, च०, छ०, पं० ।
२ बानयत--ह०, ज०, मु० । ३ तन--ह०, श०, ज० । तनु--च०, छ०,

दुर्जनको काल सो कराल पाल सज्जनको,
सुमिरे हरनहार तुलसी को[४] पीर को।
सीय सुखदायक दुलारो रघुनायक को,
सेवक सहायक है[५] साहसी समीर को ॥१०

शब्दार्थ—सींवँ = सीमा; हद; मर्यादा। भीम = भीषण; भयानक। बानइत (बानैत) = बाना वा विरुद धारण करनेवाला; बानाबंद। बाना = अंगीकार किया हुआ धर्म। बरायो = चुने हुये। बराना = चुनना; बहुत-सी वस्तुओंमेंसे अपनी इच्छानुसार अपने कामकी चीजको छाँट या चुन लेना। कुलिश = वज्र। जोर = परिश्रम। परै = पड़नेपर। रोर = कोलाहल, रौला, चिल्लाहट। = दुर्दमनीय, प्रचंड। = कर्कश (ह०)। करुणा = वह मनोविकार जो दूसरेके दुःखके ज्ञानसे उत्पन्न होता है और दुःखको दूर करनेकी प्रेरणा करता है; दया। कलित = शोभित; युक्त। धार्मिक = धर्माचरण करनेवाला। धर्मात्मा। धीर = धैर्यवान्, दृढ़ और शान्तचित्तवाला। = धर्मपालनमें अचल। = जिसकी समस्त इन्द्रियाँ वशमे हैं। दुर्जन = दुष्ट पुरुष। काल = मृत्यु, यमराज। सज्जन = सत्पुरुष, भले मनुष्य। पीर = पीड़ा, कष्ट।

पद्यार्थ—पवनदेवके महान पराक्रमी पुत्र महान् बलकी सीमा महान् भयानक, महान् बानाबंद और श्रीरघुवीरके चुनेहुये महावीर प्रसिद्ध है। शरीर वज्रके समान कठोर है, रणमें परिश्रम पड़नेपर दुर्दमनीय होजाता है, रणस्थलमें कोलाहल मच जाता है। धर्मात्मा और जितेन्द्रिय (हनुमान्जी) का मन करुणायुक्त है। दुष्टोंके लिये कालके समान भयंकर और सज्जनों-

---

व०, पं०। ४ के--ज०। ५ है--ज०, श०।

का पालन करनेवाले हैं। स्मरण करनेसे तुलसीदासकी पीड़ाको हरनेवाले हैं। श्रीसीताजीको सुख देनेवाले, श्रीरघुनाथजीके लाड़ले और सेवकोंके सहायक है।१०।

१—(क) 'महाबल सींवँ', 'महावीर'—पद २ (१,५) ४ (५), ६ (५), ७ (७) देखिये।

(ख) 'महाभीम'—पद १ (४) देखिये। भीमसेनको जो रूप दिखाया था उतनेहीसे वे डर गये थे। श्रीहनुमान्‌जीने मुस्कराते हुए उनसे कहा कि तुम मेरे इतनेही बड़े रूपको देख सकते हो,—'एतावदिह शक्तस्त्वं द्रष्टुं रूपं मम। भा० वन० १५० ६।' मैं तो इससे भी बड़ा हो सकता हूँ, भयानक शत्रुओंके समीप मेरी मूर्ति अत्यन्त ओजके साथ बढ़ती है। महान् भयानकसे भयानक शत्रुओंको भी भयभीत करनेवाला रूप धारण करनेसे 'महा भीम' कहा।

(ग) 'महा बानइत'—अर्थात् इनके पराक्रम, प्रताप, बल, धैर्य, अघटित-घटन-पन, उथपे-थपन-पन, बंदीछोर-पन, शरणपालत्व, पैज-पूरो-पन आदिकी विरुदावलीके समान किसी की भी विरुदावली नहीं है।—'अघटित-घटन सुघट-बिघटन ऐसी बिरुदावली नहिं आन की।' (वि० ३०)। 'बाँकुरो बीर बिरुदैत' पद ३ (२) देखिये।

२—'बरायो रघुबीर को' इति। श्रीहनुमान्‌जीसे प्रथम भेंट होनेपर ही श्रीरामजीने लक्ष्मणजीसे कहा है कि जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त हों, उस राजाके सभी मनोरथ दूतोंकी बातचीतसे ही सिद्ध होजाते हैं। (वा० ४।३।३५)। कम्ब रामायणमें और भी स्पष्ट वचन हैं। वे कहते हैं कि "मुझे निश्चित रूपसे ज्ञात होरहा है कि यह सर्व लोकोंके लिये आधार बन सके, ऐसे पराक्रम तथा अधिक महिमासे सम्पन्न है। इस

महानुभावसे भेंट हुई, एक अच्छा साधन हमने प्राप्त किया, जो सीतान्वेषणमें सहायक बनेगा। अब हमारी विपदा मिट गई।" उन्होंने स्वयं भी अनुभव किया कि हनुमान इस कार्यको सफल करनेमें समर्थ हैं। फिर मनमें विचारकर कि "कार्यों द्वारा जिनकी परीक्षा कर-ली गई है तथा जो सबसे श्रेष्ठ समझे गये हैं, वे हनुमान् सीताके खोजके लिये भेजे जारहे हैं। स्वयं हनुमान् भी अत्यन्त निश्चितरूपसे कार्यको सिद्ध करनेका विश्वास रखते हैं।", उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीको मुद्रिका देकर यह कहकर कि तुम्हारा उद्योग, पराक्रम, धैर्य और सुग्रीवका संदेश कार्य-सिद्धिकी सूचना दे रहे हैं,—'व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः। वा० ४।४४।१४।'—फिर उन्होंने 'अतिबल-हरिवर !' संबोधितकर कहा था कि 'मैंने तुम्हारे बल-का आश्रय लिया है। तुम अपने महान् बल-विक्रमसे सीताकी प्राप्तिका प्रयत्न करो।' (वा० ४।४४।८-१०,१२,१७)। श्लो० १० में 'अस्य परिज्ञातस्य कर्मभिः।' शब्द आये हैं।—चुनाव तो यहीं होगया। आगे फिर इनके कार्य सुने और देखे, तबतो अपना निश्चित सिद्धान्त एवं विश्वास (कि ऐसा महान् वीर कोई नहीं है) आपने महर्षि अगस्त्यसे भी कह दिया और उन्होंने उसका समर्थन किया। गोस्वामीजी ललकार कर कहते हैं-'नाक-नर-लोक पाताल कोउ कहत किन, कहां हनुमान से बीर बाँके। क० ६।४५।' [मु० ने 'बरायो' का अर्थ 'छोड़कर' किया है।]

३—'कुलिस कठोर तन...' इति। (क) वस्तुतः श्रीहनु-मानजीका शरीर वज्रसे भी अधिक कठोर है, नवजात बालक-तनमें ही इन्द्रका वज्र इनके शरीरमें लगकर कुंठित होगया था।

(ख) 'रोर रन'—हनुमान्‌जीकी रणकर्कशता, दुर्दमनी-

यता कवितावली लंकाकांडके—'बिरुझो रन मारुतको बिरुदैत जो कालहु कालु सो बूझि परै। ३६।', 'जे रजनीचर बीर बिसाल कराल विलोकत काल न खाये।…लूम लपेटि अकास निहारि कै हांकि हठी हनुमान चलाये।…।३७', 'हाथिनसों हाथी मारे घोरेसों सँघारे घोरे, रथन सों रथ विदरन बलवान की। चंचल चपेट, चोट चरन, चकोट चाहें हहरानीं फौजैं भहरानीं जातुधान की।…लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट देखौ देखौ लखन! लरनि हनुमान की। ४०।', 'दबकि दबोरे एक, वारिधि में बोरे एक, मगन महीमे, एक गगन उड़ात हैं। पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक, चीरि-फारि डारे एक मींजि मारे लात हैं। ४१।', '…भट जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि-फेरि कै। मारे लात, तोरे गात भागे जात हाहा खात कहैं 'तुलसीस राखि' रामकी सौं टेरिकै। ४२।', तथा 'कतहुं बिटप भूधर उपारि पर-सेन वरष्षत। कतहुँ बाजिसों बाजि मर्दि गजराज करष्षत। चरनचोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत। बिकट कटकु बिद्दरत बीरु बारिदु जिमि गज्जत॥ लँगूर लपेटत पटकि भट 'जयति राम जय' उच्चरत। तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत। ४७।'—इन उद्धरणोंमें कविने स्पष्ट दिखा दी है।

३ करुनाकलित मन…'—'महाबलसींव' से 'रोर रन' तक ये सब गुण जो लंकामें प्रमाणित हुए, उन्हें कहकर 'करुना-कलित मन…' कथनमें भाव यह है कि श्रीसीताजीको दुखित देखकर उनको करुणा आई, वे उनके दुःखसे स्वयं दुःखी हो गये। अतएव उन्होंने दुःख दूर करनेके लिये यह पराक्रम प्रकट कर दिया। इस प्रसंगमें उनका धैर्य भी कहा गया है। यथा—'सुवन समीरको धीर धुरीन बीर बड़ोइ। देखि गति सिय मुद्रि-

काकी वाल ज्यों दियो रोइ ॥ अकनि कटु वानी कुटिलकी क्रोध विंध्य बढ़ोइ । सकुचि सम भयो ईस आयसु कलसभव जिय जोइ । वुद्धि वल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ ।...। गी० ५। ५।'—रावणने श्रीसीताजीसे जो बातें कहीं, उन्हें सुनकर क्रोध इतना बढ़ा था कि तुरन्त प्रकट होकर रावणका वध कर डालें। परन्तु उन्होंने इस क्रोधको अपनी बुद्धिके वलसे रोका। यह धैर्यका प्रमाण है। क्यों क्रोधको दबाया ? इसका कारण 'ईस आयसु' बताया। स्वामीकी आज्ञा न थी। आज्ञापालन धर्म है। यथा 'सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा। १।७७।२।' (यह शिववाक्य है)।—अतः 'धार्मिक' विशेषण दिया।—विना श्रीसीताजीको श्रीरामका सन्देश सुनाये और धीरज दिये अपना पराक्रम प्रकट करना उचित न समझ-कर इन्होंने संकल्प किया कि कलही मैं 'लंका करहुँ सघन घमोइ।' और वही किया। श्रीसीताजीने भी इनको परम धर्मा-त्मा कहा है—'श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परम धार्मिकः' (वा० ६।११६।२७।)।

४ (क) 'दुर्जन को काल...।' यथा—'कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये। वा० ५।४६।४१।' युद्धके लिये फाटकपर खड़े होकर वे प्रजाका संहार करनेके लिये उद्यत हुये कालके समान जान पड़ते थे। 'पाल सज्जन' में 'सेवक हित संतत निकट' (पद १), 'सेवक सरोरुह सुखद (पद ६), 'सरन आये अवन' (पद८), 'नाम कलिकामतरु' (पद ६) तथा 'भक्त कामदायक' (वि० २८) के भाव है। 'दुलारो'—पद ६ 'रामको दुलारो दास', 'सेवक सरोरुह सुखद' देखिये।

(ख) 'सीय सुखदायक'—पद १ में 'सिय सोच हरन' सिंधुतरनके प्रसंगमें कहा था। फिर पद ८ में 'दूत रामराय को'

के प्रसंग में 'सीय सोच समन' कहा। उन दोनोंमें सुन्दरकांड का प्रसंग है। उसमें समुद्रको लाँघकर श्रीसीताजीका दर्शनकर अपनेको रामदूत बताया था। यथा-'राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की। ५।१३।६।' अतः उस समयका शोच दूरकर धीरज देना वहाँ कहा गया। और यहां 'रणमें विजय'—रूपी समाचार सुनाकर सुख जो दिया,—'सुनि कपि वचन हरष उर छायो।। अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल-कह पुनि पुनि रमा। का देउँ तोहि त्रैलोक महुं कपि किमपि नहिं बानी समा। ६।१०६।',—यह सुख अभिप्रेत है। साहसी—पद ६ (५) देखिये।

११—घनाक्षरी

रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरि हर,
मीच मारिबे को ज्याइबे[1] को सुधा पानु भो।
धरिबे को धरनि तरनि[2] तम दलिबे को,
सोखिबे कृसानु पोषिबे को हिम भानु[3] भो।।
खल दुख दोषिबे को जन परितोषिबे-को,
माँगिबो मलीनता[4] को मोदक सुदान[5] भो।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर,
तुलसी को साहिब[6] हठीलो हनुमान भो ।।११

१ ज्यायवो—प०, च०, छ०, श०। ज्याइबे—ह०। २ तरुनि--श०। ३ भानु--ह०, च०, छ०, सु०, व०। भान--श०। मलीन ताको--ह०, ज०। मलीनता को--च०, छ०, व०, पं०, श०। ५ सुदानु--ह०। ६ साहिब--ह०, च०, छ०, ज०, पं०। साहेब--व०

शब्दार्थ—रचिबे = रचना करने । रचना = निर्माण करना, बनाना । जैसे = समान, सदृश । मीच = मृत्यु । ज्याइबे = जिलाने । सुधा = अमृत । पान = पीना । धरिबे = धारण करने । धरनि (धरणी) = पृथ्वी । तरनि (तरणि) = सूर्य । तम = अन्धकार । दलिबे = नाश करने । सोखिबे = सुखा देने, सोषण करने । कृशानु = अग्नि । पोषिबे = पोषण (पालन, वर्द्धन तथा पुष्ट) करने । हिमभानु = चन्द्रमा । दोषिबे = दोष लगाने । जन = भगवद्भक्त । परितोषिबे = परितोषण (सन्तुष्ट, प्रसन्न) करने । मोदक = लड्डू । = मोद एवं आनन्द देनेवाला । सुदान = सुन्दर दान । आरत (आर्त्त) = दुखियों । निवारिबे = दूर करने; हटाने । तिहुँ पुर = तीनों लोकोंमें । साहिब = स्वामी । हठीला = प्रतिज्ञाको हठपूर्वक पूरा करनेवाला ।

पद्यार्थ—रचना करनेमें ब्रह्माके, पालन करनेके लिये भगवान् विष्णु, मारनेको हर (भगवान् शंकर) और मृत्यु तथा जिलानेके लिये अमृतपानके समान हुये । धारण करनेमें पृथ्वी, अन्धकारका नाश करनेमें सूर्य, सोषण करनेमें अग्नि और पोषण करनेमें चन्द्रमा (के समान) हुये । दुःख देने दोष लगानेमें खल, (आश्रितोंको) संतुष्ट करनेमें हरिभक्त और माँगनारूपी मलिनता (का नाश करने) के लिये आनन्द देने-वाला सुन्दर दान (के समान) हुये । तीनो लोकोंके दुखियोंका दुःख मिटानेके लिये तुलसीदासके स्वामी हठीले (दृढ़ प्रतिज्ञ) हनुमान् हुये ।११।

टिप्पणी—१ तीनों लोकोंमें जिस-जिस गुणमें जो सर्व-श्रेष्ठ है, उस-उसके नाम और गुण 'रचिबे को' से लेकर 'सुदान भो' तक गिनाये । विधि, हरि और हर सृष्टिकी रचना, पालन और संहारके देवता हैं । यथा 'जाके बल बिरंचि हरि ईसा ।

पालत सृजत हरत दससीसा। ५।२१।' श्रीशंकरजी कल्पके अन्त में समूह सृष्टिका संहार करते हैं। यथा—'महाकल्पांत ब्रह्मांड-मंडलदवन', 'सकल लोकांत कल्पांत शूलाग्रकृत'—(वि० १०, ११)। मृत्यु (यमराज, काल) नित्य ही जीवोंको (जब जिसकी आयु पूरी होती है) मारता है। मरणप्रायको अमृत जिला देता है, यथा 'अमृत लहेउ जनु संतत रोगी। १।३५०।६।' धारण शक्तिके कारण ही पृथ्वीका नाम 'धरणि' है। सूर्योदयसे ही रात्रिका अंधकार नष्ट होता है—'उदय तासु तिभुवन तम भागा'। अग्नि सबको सोख लेता है, प्रलयकालमें सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर देता है।—'काह न पावक जारि सक। २।४७।' चन्द्रमा अपनी अमृतमय शीतल किरणोंसे जड़ी-बूटी, अन्न आदिको पुष्ट करते हैं, जिससे जीवोंका पोषण होता है। दूसरोंको अकारण ही दुःख देना खलोंका स्वभाव है, वे दोष ही देखा करते हैं, 'पर दुख हेतु असंत अभागी', 'सहस नयन पर दोष निहारा'। जहाँ दोष नहीं भी है, वहाँ भी झूठे दोष बना लेते हैं और उस बहाने पीड़ा पहुँचाते है। हरिभक्त स्वाभाविकही परोपकार द्वारा सबको सुख देते हैं; यथा 'हेतु रहित परहित-रतसीला। ३।४६।', 'पर उपकार बचन मन काया', 'संत मिलन सम सुख जग नाहीं', 'बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी'। (७।१२१)। 'सुदान' से वह उत्तम दान अभिप्रेत है, जिसे पानेपर याचक 'अयाचक' हो जाता है। यथा 'जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे। क० ७।२८।', 'जाचक सकल अजाचक कीन्हे।' कंगाली भारी दोष है, इसीसे उसे मलिनताकी उपमा दी।

'रचिबेको' से 'सुदान भो' तक पृथक्-पृथक् एक-एक गुण और उनके सर्वश्रेष्ठ अधिष्ठाताओंको गिनाकर 'आरत की

"'हनुमान भो' को कहकर सूचित किया कि ये समस्त गुण एक ठौर श्रीहठीले हनुमान्‌जीमें विद्यमान् हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहनुमान्‌जी हमारे ऐसे महान् समर्थ स्वामी हैं। उपर्युक्त समर्थ त्रिलोकीका दुःख दूर न कर सके, श्रीहनुमान्‌जी ने ही सबका दुःख मिटाया। श्रीहरिहरप्रसादजीने दूसरा अर्थ यह दिया है—'जैसे सृष्टि रचनाके लिये ब्रह्मा, पालनके लिये विष्णु, मारनेके लिये हर और मृत्यु"'हुये, वैसेही त्रिलोकीके आर्तजनोंका दुःख दूर करनेके लिए 'हनुमान्' ही हुए (अर्थात् इनका आविर्भाव इसीलिये हुआ। दूसरा कोई इस कार्यमें इनके समान नहीं हुआ)।

२ 'आरतकी आरति"' इति। इसमें पद ३ के 'दीन-दुख-दवन को कौन तुलसीस है पवन को पूत रजपूत रूरो ?' का भाव है। वहाँ कविने ललकारकर यह प्रश्न किया था कि कोई दूसरा हो तो बताओ ? और यहाँ सीधे-सीधे उसीको कह दिया कि एकमात्र ये ही हैं। विनयमे भी इनको 'जगदार्तिहारी' और 'हंतार संसार संकट' विशेषण दिया है। (वि० २५,२८। ये हठपूर्वक दुःखका निवारण करते हैं। 'हठीलो में पद ३ के 'पैज पूरो' का भाव है।

१२—घनाक्षरी

सेवक स्योकाई[1] जानि जानकीस मानै कानि,

सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक[2] को।

देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ,

---

१ सेवकाई--च०, छ०, ज०, पं०। स्योकाई--ह०, मु०, व०, श०।

२ नाँक--व०।

बापुरे[3] बराक 'और राजा राना †' राँक को ॥
जागत सोवत बैठे बागत बिनोद मोद,
ताकै[4] जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक[5] को।
सब दिन रूरो परै[6] पूरो जहाँ तहाँ ताहि,
जाके[7] है 'भरोसो हिय[8] हनुमान‡' हाँक को॥१२

शब्दार्थ—स्योकाई = सेवा। जानकीश = श्रीराम। कानि = संकोच, मर्यादाका ध्यान, लोकलज्जा, दबाव। सानुकूल = प्रसन्न, सहायक, पक्षमें। शूलपाणि = त्रिशूलधारी शिवजी। नवै = नवते (प्रणाम करते, झुकते, आदरणीय समझते, नम्र रहते) हैं। नाक = स्वर्ग। नाकको नाथ = इन्द्र। 'देवी' = देव-पत्नियाँ। दुर्गा, काली, चामुण्डा, पार्वती, योगिनी आदि। दानव = दैत्य, असुर। दयावने = दयाके पात्र; दया-योग्य; दीन। ह्वै = होकर। बापुरा = तुच्छ; दीन; बेचारा। बराक = नीच शोचनीय, अधम। (श०सा०)। = गये बीते (ज०)। राना (राणा) = राजपूत; सरदार। राँक (रंक) = दरिद्र, कंगाल। को = क्या चीज हैं; किस गिनतीमें है। बागत = चलते-फिरते हुए। विनोद = मनोरंजक व्यापार, क्रीड़ा। मोद = मानसिक आनन्द। ताकना = सोचना, विचारना, चाहना। अनर्थ = अनिष्ट। एक आंक = दृढ़ निश्चय, निश्चित सिद्धान्त। = निश्चय करके। (ह०,ज०)। रूरो (रूरा) = श्रेष्ठ, उत्तम अच्छा, भला। पूरा पड़ना = कार्योंका पूर्ण होना, कामनाओंका सिद्ध होना।

३ बापुरो--श०। † कहा और राजा'--व०। ४ ताके--ह०। ५ आंक--च०,छ०। (रूरौ) परै--पं०। ६ परैं--ह, श०। परै--छ०, पं०, व०।
७ जाको--ह०, श०। जाके--छ०, व०। ८--हिय-ह०, छ०। हिये--व०, श०। ‡'भरोस हिय हाँक हनुमान'—छ०।

पद्यार्थ—सेवककी सेवा जानकर श्रीजानकीपति रघुनाथ-जी (सेवा करनेवाले का) संकोच मानते हैं, त्रिशूलधारी श्रीशंकर उसपर प्रसन्न रहते हैं, स्वर्गपति इन्द्र उसको प्रणाम करते हैं और देवी-देवता-दैत्य दयाके पात्र वनकर हाथ जोड़ते हैं, तव बिचारे नीच दरिद्री राजा राना क्या चीज़ हैं? जागते, सोते, बैठे या चलते उसके विनोद एवं मानसिक आनन्दमें जो अनिष्टका विचार करे, ऐसा दृढ़ निश्चय वाला समर्थ कौन है ? जिसके हृदयमें श्रीहनुमानजीको हाँकका भरोसा है. सब दिन उसका भला है और सर्वत्र उसकी कामनायें पूरी होती हैं। १२।

टिप्पणी—१ 'सेवक स्योकाई…'—श्रीहनुमान्‌जीने जो सेवा की उससे तो प्रभु उनके हाथ बिक-से गए,—यह सभी जानते हैं। यहाँ जो उन हनुमान्‌जीकी सेवा करता है, उसके संवन्धमें कहते हैं कि श्रीरामजी उसकी भी कानि मानते हैं।

श्रीरामजीको शुचि सेवक अत्यंत प्रिय है, उसकी सेवासे उनको बहुत सुख होता है, वे बड़े प्रसन्न होते हैं। यथा 'रामहि सेवक परम पिआरा॥ मानत सुख सेवक सेवकाई। २। २१६।१-२।' अतएव वे उसकी सेवाको मान देते हैं, उसकी रुचि रखते हैं, सब सुख देते हैं। यथा 'मानत राम सुसेवक सेवा। २।२६५।७।', 'सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई। २।२६६।१।'—देवगुरु एवं देवताओंका यह संमत और श्रीभरतजीकी भक्ति उनके हृदयमें देख 'अंतरजामी प्रभुहि सकोचू। २।२६६।५।' श्रीरामजी और श्रीशंकरजीही प्रसन्न हैं, तव अनिष्टकी इच्छा कोई क्या करेगा ?—'सीम कि चांपि सकै कोउ तासू। वड़ रखवार रमापति जासू। १।१२६।८' 'नवै नाथ नाकको'—रावणकी वन्दीसे इन्द्र हनुमान्‌जीकी कृपासे ही छूटे। 'लोकपाल अनुकूल विलोकिवो चहत विलोचन कोर को' (वि०

३१), अतः वे इनके सेवकोंका आदर करते हैं, मस्तक नवाते हैं, श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्नताका यह साधन मानते और करते हैं। देवी-देव तो इन्द्रको प्रजा हैं। स्वामी नवते हैं, अतः ये सब दीन बनकर हाथ जोड़ते हैं। ❀

२ 'सब दिन रूरो···' इति। यह हनुमान्‌जीकी हांकके भरोसेकी फलश्रुति कही। अतः हाँक' कैसी है यह जान लेना चाहिये। उनकी हाँकपर शिवजी और ब्रह्माजी भी चौंक पड़ते हैं, सूर्य स्थकित होजाते हैं (—'कौनकी हाँकपर चौंक चंडीसु विधि चंडकर थकित। क० ६।४५'—), दिक्‌पाल पृथ्वीको दांतोंसे दबाकर चिक्कारने लगते हैं, कच्छप और शेष सिकुड़ जाते हैं, शिवजी शंकित होजाते हैं, पृथ्वी और पर्वत विचलित होजाते हैं, सभी समुद्र उछलने लगते हैं, ब्रह्माजी व्याकुल और बहिरे होकर दिशा-विदिशाओंको झांकने लगते हैं और निशाचरियोंके गर्भ गिर जाते हैं। (क० ६।४४)।—अतः जिसके हृदयमें यह महत्व जमा हुआ है, उसके निकट बुरे दिन कब आ सकते हैं ?

१३—घनाक्षरी

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,

❀श्रीचक्रजी लिखते हैं कि 'राजदरबारके अतिरिक्त वन आदिमेंभी व्यक्त या अव्यक्त रूपसे भक्तोंके मतानुसार महावीरजी प्रभुके नित्य सहचर हैं। वे प्रभुसे किसी भी रूपमें पृथक् नहीं रहते। अतः रघुनाथजीके चाहे जिस रूप या लीलावेशकी उपासना हो, उसमें महावीरजीकी उपासना गौण न होकर प्रधान ही रहेगी। यहाँ तक कि मधुर भावमें भी भीतर प्रवेशके लिये द्वारस्थित पवनतनयके आज्ञाकी अपेक्षा होगी ही। यदि केवल हनुमान्‌जीको ही प्रसन्न कर लिया जावे तो रघुनाथजीकी कृपा स्वतः प्राप्त हो जाती है। [आंजनेय]

लोकपाल सकल लखन राम जानकी।
लोक परलोक को बिसोक सो त्रिलोक[1] ताहि,
तुलसी 'तमाहि कहि कहा'[†] बीर आन की।
केसरीकिसोर बंदीछोर के निवाजे[3] सब,
कीरति बिमल कपि करुनानिधान की।
बालक ज्यौं[4] पालिहैं कृपाल[5] मुनि सिद्ध ताको,
जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान को ॥१३

शब्दार्थ—सानुग = स-अनुग = सेवकों (नन्दीश्वर, वीरभद्र आदि गणों) सहित। सगौरि = श्रीपार्वतीजी सहित। लोकपाल:—रवि, शशि, पवनदेव, वरुण, कुबेर, अग्निदेव, यम और इन्द्र आठ दिशाओंके लोकपाल हैं। कहीं-कहीं कालको भी लोकपाल कहा है। अमरकोशमें त्रिदेवको लोकेश कहा है और इन्द्रादिको दिक्पाल–'हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः।', 'इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैऋर्तो वरुणो मरुत्। कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्।' विनय पद९८ में भी 'लोकपाल' शब्दसे 'त्रिदेव' अर्थ ग्रहण किया गया है। किसीका मत है कि गणेश, ब्रह्मा शिव, दुर्गा और वायु लोकपाल हैं।—यहाँ 'सकल' विशेषण देकर शिवजीके अतिरिक्त इन सबोंका ग्रहण कर लिया गया। तमाहि = तमा (फ़ा०) + हि = लोभ या लालच ही।

---

१ तिलोक--व०, पं०। बिलोक--छ०, च०। त्रिलोक-ह०, ज०, श०। † 'तमाहि ताहि काहु'—छ०, च०, पं० (काहू)। 'तमाइ कहा काहु [बीर बान की]--व०। तमाहि कहि कहा--ह०, ज०, श०। तमाइ कहा आन गीरबान की -मु०। ३ नेवाजे--व०। ४ ज्यौं--ह०, छ०, पं०। ज्यों--च०, व०, श०। ५ कृपाल--ह०। कृपालु--औरों में।

कहि = कहिये (तो भला); कही (जा सकेगी)। कहा = क्या। आन = अन्य, दूसरे । निवाजे = अनुगृहीत, उपकृत, जिसपर कृपा की गई हो। कीर्ति = यश । विमल = निर्मल, स्वच्छ, पवित्र। हुलसति = हर्ष, आनंद वा उल्लास पैदा करती है । सिद्ध—ये भी देवताओंकी एक जाति-विशेष हैं । भुवर्लोक तथा हिमालय पर्वत इनके निवास-स्थान हैं । योग या तपसे अलौकिकसिद्धि-प्राप्त पुरुष भी 'सिद्ध' कहलाते हैं जैसे कि याज्ञवल्क्य आदि ।

पद्यार्थ—जिसके हृदयमें श्रीहनुमान्‌जीकी हाँक उल्लास पैदा करती है, उसपर अपने पार्षदों और श्रीपार्वतीजी सहित भगवान् शंकर, समस्त लोकपाल, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और श्रीजानकीजी प्रसन्न रहते हैं। वह अपने लोक और परलोक की ओरसे निश्चिन्त है । कहिये (तो) तुलसीदास ! उसे त्रैलोक्य में किसी अन्य वीरकी लालसा ही क्या ?* बंदीसे छुड़ानेवाले केसरीकुमारके (ही) सब (त्रिलोकी) उपकृत हैं—करुणा-निधान कपि श्रीहनुमान्‌जीकी कीर्ति (ऐसी) निर्मल है । अतः जिसके हृदयमें श्रीहनुमान्‌जीकी हाँक उल्लास पैदा करती है, मुनि और सिद्ध दयालु होकर बालकके समान उसको पाले-पोसेंगे । १३।

टिप्पणी—१ पद १२ से यह पद मिलता-जुलता है। थोड़ा-सा भेद है । वहाँ हाँकका भरोसा रखनेका फल कहा गया और यहाँ जिसके हृदयमे 'हाँक उल्लास पैदा करती है, उल्लसित होती है' उसके सम्बंधको फलश्रुति है । वहाँ 'सेवककी सेवकाई जानि' यह प्रारम्भमें कहा है, वह यहाँ नहीं है—यहाँ केवल

* वा, तुलसी ! त्रैलोक्यमें उसे दूसरे किसी वीरकी लालसा क्या कही जा सकेगी ?

'हांकका उल्लास' है। वहाँ केवल 'जानकीश' 'शूलपाणि' का सानुकूल होना कहा था और यहाँ 'सानुग-सगौरि-शूलपाणि', 'लक्ष्मण, राम, जानकी' एवं 'सकल-लोकपाल' का सानुकूल होना कहा,—यह विशेषता है। वहाँ कहा था कि 'कोई उसका अनिष्ट ताक नहीं सकता' और यहाँ 'बालक ज्यों पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको'। इत्यादि।

२ (क) 'लोक परलोक…'—अर्थात् लोक-परलोक दोनों बने-बनाये हैं। (ख)—'बंदीछोरके निवाजे सब'—सब इन्हींकी कृपासे बंधनसे छूटे हैं, अतः इनका आश्रित उनमेंसे किसीकीभी लालसा क्यों करने लगा। (ग)—'करुनानिधान' विशेषणसे जनाया कि श्रीहनुमान्‌जीने करुणावश ही सबको 'निवाज़ा' है; इनका कोई स्वार्थ नहीं था। अतः 'कीर्ति' को निर्मल कहा।

३ 'बालक ज्यों पालिहैं…' इति। मुनि और सिद्ध सभी भयातुर हो श्रीरामकी शरण गये थे। यथा 'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ-पद-कंजा। १।१८६।' श्रीहनुमान्‌जीने निशाचरोंका नाशकर सिद्ध सुर सज्जन आदिको आनंद दिया। अतः उनके द्वारा सेवित हैं। यथा 'यातुधानोद्धतक्रुद्धकालाग्निहर सिद्ध-सुर सज्जनानंदसिंधो।', 'सिद्ध-सुर-वृन्द योगेन्द्र-सेवित सदा' (वि० २७; २६)। अतएव हनुमदाश्रित-पर उनका कृपालु होना उचित ही है।

१४—घनाक्षरी

करुनानिधान बल-बुद्धिके निधान मोद-
महिमा-निधान गुन-ज्ञानके निधान हौ।
बामदेवरूप भूप राम के सनेही नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हौ॥

*'आपनो प्रभाव सीतानाथ को सुभाय सील,
लोक बेद बिधिहू' बिदुष हनुमान हौ।
मन की बचन की करम की तिहूँ प्रकार,
तुलसी तिहारो तुम साहिब सुजान हौ ॥१४

शब्दार्थ—निधान=आधार; समुद्र। महिमा=महत्व, प्रताप, प्रभाव, गौरव। निर्वान=मोक्ष। बिधि=किसी शास्त्र या धर्मग्रन्थमें किया हुआ कर्तव्यनिर्देश। कोई कार्य करनेकी रीति। विधान, पद्धति, रीति। विदुष=पंडित। तिहारो= तुम्हारा। सुजान=प्रवीण, मनकी जाननेवाले।

पद्यार्थ—हे श्रीहनुमान्‌जी! आप करुणा, बल, बुद्धि, मानसिक आनंद, महिमा, गुण और ज्ञान (पृथक्-पृथक् इन सबों) के समुद्र हैं, श्रीशंकरजीके स्वरूप और राजा श्रीरामचन्द्रजीके स्नेही (परम अनुरागी) हैं, जो आपका नाम जपता है उसे आप अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष (चारों फल) देते हैं। अपने प्रभाव, श्रीसीतानाथके शील स्वभाव और लोक तथा वेदके विधानके भी आप ज्ञाता पंडित हैं। मन, वचन और कर्म तीनों प्रकार (की वृत्तियों) से तुलसीदास आपका है, आप सुजान स्वामी हैं। १४।

टिप्पणी—१ 'करुनानिधान बल बुद्धि···' इति। करुना-

* ह० में 'आपनो प्रभाउ लइ लोक बेद बिधिहू में दुखके हरैया' है और उपर्युक्त पाठको लिखा है कि किसी पोथीमें ऐसा भी पाठ है। उपर्युक्त पाठ ज०में है।'आपनो प्रभाव लाइ लोक बेद बिधिहू में दुःखके हरइया'—श०।'आपने प्रभाव सीतानाथके सुभाव सील लोक-बेद बिधिके'--छ०, च०, व०, पं० [बिधिहू] श्रीअवधके वयोवृद्ध प्रायः समस्त सन्तोंने उपर्युक्त पाठ ही स्वीकार किया है। अतः मैंने भी वही पाठ रक्खा है।

निधान'—पद १० (३) तथा १३ (२ ग) देखिये। बल-बुद्धिके समुद्रः—सुरसाने इसकी परीक्षा लेकर कहा है—'बुधि बल मरम तोर मैं पावा। राम काज सब करिहहु तुम्ह बल-बुद्धि-निधान। ५।२।' श्रीसीताजीने भी देखा है और आशीर्वाद दिया है—'होहु तात बल सील निधाना॥ अजर अमर गुननिधि सुत होहू।…' (५ १७)। मोदके भी निधान हैं यथा—'सुमिरत सकट-सोच-बिमोचनि मूरति मोदनिधान की। वि० ३०।' महिमानिधान अर्थात् अघटित-घटना-पटीयसी, असंभवको भी संभव कर दिखानेवाले हैं, यथा—'अघटित-घटन सुघट-बिघटन ऐसी विरुदावलि नहिं आन की। वि० ३०।', 'तेरी महिमा ते चलै चिंचिनी चिया रे। वि० ३३।' प्रलयकालके महासागर, संवर्तक अग्नि तथा लोकसंहारके लिये उठे-हुये कालके समान प्रभावशाली होनेसे इनके सामने कोई ठहर नहीं सकता—'हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात्।' (वा० ७।३६।४८।)। यह 'महिमानिधानता' है। ज्ञाननिधान, यथा 'तोसों ज्ञाननिधान को सर्वज्ञ बिया रे। वि० ३३।', 'पवनतनय बल पवन समाना। बुधि-बिबेक-बिज्ञान-निधाना। ४।३०।४।'

२ 'वामदेवरूप'—पद ६ (५) देखिये। 'भूप रामके सनेही'—श्रीरामजीमें इनका स्निग्ध प्रेम है। ये श्रीरामरूपी पूर्णचन्द्रके चकोर हैं,—'राम परिपूरन चंद चकोर को। वि० ३१।' मन-कर्म-वचनसे उनके अनुरागी हैं, यथा—'बचन-मानस-कर्म सत्य-धर्मब्रती जानकीनाथ चरणानुरागी। वि०२६।' वानरों आदिकी विदाई के समय भी श्रीहनुमान्‌जीने 'स्नेह' का ही वरदान माँगा और पाया है।—'स्नेहो परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा। भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु। वा० ७।४०।१६।' अर्थात् राजन्! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह

सदा बना रहे। वीर! आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके सिवा और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। श्रीराम-जीने दिया भी;—'एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः।२१।' अर्थात् ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है।

३ 'नाम लेत देत अर्थ…'—पद ६ में 'नाम' को कामतरु कहा था। कामतरु अर्थ, धर्म और काम ही देता है। अतः यहाँ उसको स्पष्ट किया कि ये मोक्ष भी देते हैं। देनेवालेका नाम भी यहाँ कहा कि हनुमान्‌जी स्वयं चारों पदार्थ दे-देते हैं।

४ 'आपनो प्रभाव…'—अपना प्रभाव जानते हैं। इन्होंने श्रीसीताजीसे कहा है कि मैं अपने पराक्रमका भरोसा करके आपका दर्शन करनेके लिये आया हूँ।—'त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम्। वा० ५।३४।४०।' उन्होंने अपना प्रभाव समुद्रतटपर कहा भी है, जो वा० ४।६७।६–३० में वर्णित है। पद ३ (३), ६ (४ ग) में भी देखिये। श्रीसीतानाथके शील स्वभावके भी ज्ञाता हैं; यथा 'बामदेव रामको सुभाउ सील जानियति' (क० ७।१६६), 'राम रावरो सुभाउ गुन सील महिमा प्रभाउ जान्यो हर हनुमान लषन भरत। वि० २५१।' 'लोक वेद बिधि'के पंडित हैं. सूर्यदेवने सर्वशास्त्रोंका ज्ञान ऐसा करा दिया था कि इनकी समानताका कोई न था, समस्त विद्याओंके ज्ञान तथा अनुष्ठानमें ये देवराजगुरुके टक्करके थे। यथा 'सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्। वा० ७। ३६।४७।'; पद ४ (१) देखिये।

५ 'मनकी बचन की…'—पद ३१में भी 'सुसेवक बचन-मन-काय-को' कहा है। मनमें सदा आपका निवास है और एकमात्र आपका भरोसा है। यथा 'सर्वदा-तुलसि-मानस-रामपुर-बिहारी। बि० २७।' 'तुलसीके हिय है भरोसो एक ओर को।'

(पद ६)। वचनसे भी यही कहता हूँ कि तुम्हारा हूँ,—'सदा जनके मन बास तिहारो।…केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो' (पद १५)। कर्मसे प्रणाम करता हूँ, शरण हूँ, जब-जब संकट आ पड़ा आपको ही पुकारा।—'तेरे बल बलि आज लौं जग जागि जिया रे॥ जो तोसों होतो फिरो मेरो हेतु हिया रे। तौ क्यों बदन दिखावतो कहि वचन इया रे। वि० ३३।' 'साहिब सुजान' का भाव कि मैं झूठ नहीं कहता, आप हृदयको जाननेवाले हैं, मेरे हृदयका भाव आपसे छिप नहीं सकता।

१५—घनाक्षरी

मन को अगम तन सुगम किये कपीस,
काज महाराज के समाज साज साजे हैं।
देव-बंदीछोर रनरोर केसरीकिसोर,
जुग-जुग जग तेरे बिरद[1] बिराजे हैं॥
बीर बरजोर घटि जोर तुलसी की ओर,
सुनि सकुचाने साधु खलगन गाजे हैं।
बिगरी सँवारि[2] अंजनीकुमार कीजै मोहि,
जैसे होत आये हनुमान के निवाजे हैं॥१५

शब्दार्थ—अगम = पहुँचके बाहर; कठिन। सुगम = सहजसाध्य, आसीनसे। कपीश, कपिराज, कपिनाथ—ये सब इस ग्रन्थ में श्रीहनुमान्‌जीके लिये आये हैं। महाराजके काज = महाराज श्रीरामचन्द्रजीके लिये। काज = काम, कार्य। = निमित्त, लिये। समाज साज = साज-सामान, ठाटबाट; सामग्री। साजना =

1 बिरुद--पं०। 2 सँवार--छ०, च०, व०, प०।

सुसज्जित करना; बहुत सुन्दर प्रकारसे सम्पन्न करना। जुग = युग (सत्य युग, त्रेता, द्वापर, कलि)। युग युग = प्रत्येक युग में; अनंत कालसे। बिराजना = प्रकाशमान होना, चमचमाना। बरजोर = प्रचंड बलवान्। जबरदस्त। घटि = घटी; कमी; कम होजाना। जोर = बल। सकुचाना = संकोच (लज्जा) को प्राप्त होना; अप्रफुल्लित होना; भय खाना; उदास होना। गाजना = गरजना; प्रसन्न होना। बिगरी = बिगड़ी-हुई-को; चूक; जो करते न बना हो; जो दोष आगया हो। सँवारना = ठीक कर लेना; सुधारना। बिगड़ी सँवारना = बिगड़ी बात बना लेना। निवाजे = कृपापात्र लोग।

पद्यार्थ—हे कपिराज ! जो काम (दूसरोंके लिए ' मन की भी पहुंचके बाहर थे, उन्हें आपने शरीरसे सहजही कर दिया। महाराज श्रीरामचन्द्रजीके लिए सभी साज-सामान बहुत सुन्दर प्रकारसे सम्पन्न कर दिया। देवताओंको बंदीसे छुड़ानेवाले रण-कर्कश केसरीकिशोर ! आपके 'बंदीछोर', 'रण-रोर' बिरुद संसारमें युग-युगमें चमचमा रहे हैं। हे प्रचंड बलवान वीर ! मुझ) तुलसीदासके पक्षमें आपके बलकी कमी (अर्थात् आपकी उदासीनता) सुनकर साधु लोग सकुचा गये हैं और दुष्टगण गरज रहे (अर्थात् हर्षित) हैं। हे अंजनी-कुमार ! मेरी बिगड़ी-हुई-को सुधारकर मुझे वैसाही कर दीजिये जैसा आपके कृपापात्र होते आये हैं। १५।

टिप्पणी—१ 'मनको अगम'—रावणका अपकार करनेकी बात त्रैलोक्यमें कभी कोई मनमें नहीं ला सकता था। यथा 'भूमि भूमिपाल ब्यालपालक पताल नाकपाल लोकपाल जेते सुभट समाज हैं। कहै माल्यवान जातुधानपति रावरे को मन हूं अकाज आनै ऐसो कौन आजु है ॥...जारत पचारि फेरि फेरि

सो निसंक लंक ''। क० ५।२२।' श्रीरघुनाथजीका भी यही मत है।—'कृतं हनूमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम् । मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले। वा०६।१।२।' वे कहते हैं कि 'हनुमान् ने बड़ा भारी कार्य किया है। भूतलमें ऐसा कार्य होना कठिन है। इस भूमण्डलमें दूसरा कोई तो ऐसा कार्य करनेकी बात मनके द्वारा सोच भी नहीं सकता।', 'अपने बलके भरोसे दुर्धर्ष लंकापुरीमें प्रवेश करके कौन वहांसे जीवित निकल सकता हैं?' इसी प्रकार द्रोणाचलको घड़ीभरके भीतर सब विघ्नोंको नष्ट करके ले आना भी ऐसाही कार्य था। पद ६ 'द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर। ' काज जुग पूगनि को करतल पल भो।' देखिए।

२ (क) 'काज महाराजके'''—यथा 'राघवार्थे परं कर्म समीहत परंतप। वा० ६।७४।४८।' (शत्रुओंको संताप देने-वाले श्रीमारुतिजीने श्रीरघुनाथजीके लिए महान् पुरुषार्थ करने का निश्चय किया)। 'समाज साज साजे' में सुग्रीवसे मित्रता कराना तथा तत्पश्चात् 'रिच्छ कपि कटक संघटबिधाई', 'बंद्ध सागर सेतु' (त्रि० २५), आदि कार्य तथा और सब कार्य जो श्रीरामराज्याभिषेक तक इनके द्वारा हुए, वे सब आगए। (ख) —'जुग-जुग' मुहावारा है। 'अनन्तकाल से' के अर्थमें प्रयुक्त होता है। रामायण द्वारा युग-युगमें सब जानतेहैं। वेदों उपनिषदों आदिमें इनकी महिमाका वर्णन मिलता है। ऋग्वेद ३।८।१६,८।१। १८,८।३।१४, श्रीरामरहस्योपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, श्रीहनुमत् उपनिषद् आदि देखिये।

३ 'बीर बरजोर घटि जोर'''—ये बहुत विनीत वचन हैं, आगे इसीको बड़े कड़े शब्दोंमें कहा है,—'बूढ़ भये बलि मेरिहि बार कि हारि परे बहुतै नतपाले।' (पद १७)। भक्तोंपर

कोई संकट आता है तो खल प्रसन्न होते हैं कि बड़े भक्त बने थे, भगवान् इनको सुनते ही नहीं। इत्यादि। यह देखकर साधुओं-को बड़ी ग्लानि और भय हो रहा है, उनके हृदयकमल संपुटित होगये हैं।

४ 'जैसे होत आये ··निवाजे हैं'—इससे जनाया कि मैं भी आपका निवाजा हूँ। आगे पद २० में स्पष्ट कहा है कि 'जानत जहान जन हनुमान को निवाज्यो।' विनयमें भी कहा है-'तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। ३४।' आपके निवाजे कैसे होते हैं, यह पद १७ में स्पष्ट कह दिया है। यथा 'तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिनके उर साले'। 'सदा अभय जयमय मंगलमय जो सेवकु रन-रोर को' एवं 'तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि खानि सकल कल्यान की।' (वि०३१ ३०) में भी कृपापात्रों का फूलना-फलना दिखाया है। आप जनके शत्रुओंका नाश करके उसे आनन्द देते हैं, खलोंके मुखमें कालिख लगा देते हैं; यथा 'जनरंजन अरिगनगंजन मुख भंजन खल बरजोर को। वि० ३१।'—यही कृपा मुझपर करें।

१६—सवैया (मत्तगयंद-छ० च०, पं०)

×जानसिरोमनि हौ हनुमान सदा
जनके मन बास तिहारो।
ढारो बिगारो मैं काको कहा,
केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो॥
साहेब१-सेवक नाते तें२ हातो कियौ३,

× सुजान--छ०, च०, पं०। १ साहिब--छ०, च०, पं०। साहेब--ह०, ज०, व०, श०। २ तें--ह०, छ०, च०, पं०। ते--ज०, श०, व०। ३ कियौ--ह०, छ०, पं०। कियो-च०, ज०, श०।

तौ[४] तहाँ तुलसी को न चारो।
दोष सुनाये तें[५] आगेहु[६]को हुसियार[७],
ह्वैहौं मन तौ[८] हिय हारो ॥१६

शब्दार्थ—आन=ज्ञानियों, सुजानोंमें। शिरोमणि=सिरताज, श्रेष्ठ। ढारो=गिराया। काको=किसका। कारण=हेतु। खीझना (खीजना)=दुःखी वा अप्रसन्न होना। नाते=संबंध। हातो कियो=अलग कर दिया; यथा 'नाते सब हाते करि राखत राम सनेहु सगाई। वि० १६४।' चारा=उपाय, इलाज, दवा। हुसियार (होशियार)=सचेत; सावधान। हिय=हृदय। हिय हारना=हियाव न रह जाना।

पदार्थ—श्रीहनुमान्‌जी! आप सुजान-शिरोमणि हैं, (मुझ) सेवकके मनमें सदैव आपका निवास है। मैंने किसका क्या गिराया या बिगाड़ा है? मैं तो आपका (ही) हूँ, आप किस कारणसे अप्रसन्न होरहे हैं। स्वामी-सेवक-नातेसे आपने अलग कर दिया तो इसमें तुलसीका कोई इलाज नहीं (अर्थात् मेरा वश ही क्या? मैं कर ही क्या सकता हूँ?)। मेरे मनका हियाव तो जाता रहा, (तथापि) दोष सुना देनेसे मैं आगेके लिये सावधान होजाऊँगा। १६।

टिप्पणी—१ 'ढारो बिगारो मैं काको…'—(क) सेवकसे यदि किसीको कुछ हानि पहुँचती है, वह किसीका कुछ अपराध करता है, तो स्वामीको उलाहना मिलता है,—'बिगरै

४ तौ--छ०। तो-- ह०, ज०, च०, श०। ५ ते--ह०, छ०, पं०, श०। तें--च०, व०। आगेहु--ह०, श०। आगेहुँ--छ०, च०, व०, पं०। ७ होशियार--व०। ८ तो--ज०, श०।

सेवक श्वान-सों साहिब सिर गारी। वि० १५७।',—इससे स्वामीकी अपकीर्ति होती है, जो उसके खीझनेका कारण होता है। मेरी जानमें तो मुझसे किसीका अपराध हुआ नहीं।—'रामके गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब, सबसों सनेह सबही को सनमानिये। क० ७।१६८।' रामगुलाम होनेसे मेरी भी यही रीति है। (ख)—'केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो।···नाते ते हातो कियो' में विनय पद ३३ के 'केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे।' का भाव है। सेवककी रक्षाका भार स्वामीपर रहता है। यथा 'भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥ करउँ सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥ ३।४३।' मैं दुस्सह पीड़ा पारहा हूँ, मेरी रक्षा नहीं करते; इससे सिद्ध होता है कि आपने यह नाता तोड़ दिया। (ग)—'आगेहु को हुसियार ह्वैहौं'—भाव कि बाहुकी विषम वेदनासे मेरी बुद्धि व्याकुल है, मैं स्वयं समझ नहीं पाता कि मेरे किस दोपसे यह आपत्ति मुझपर आ पड़ी कि आप अप्रसन्न है; अतः आप से दोष बता देनेकी प्रार्थना करता हूँ। दोष जान लेनेसे भविष्य में फिर वैसा अपराध न होने पायेगा, परन्तु इस बार क्षमा कर दें।

१७—सवैया

तेरे थपे उथपे[1] न महेस थपै[2] थिर को कपि जे घर घाले।
तेरे निवाजे गरीबनिवाज, बिराजत बैरिन के उर साले॥
संकट सोच सबै तुलसी लिये नाम फटै[3] मकरी-के-से जाले।

---

१ उथपे—ह०, ज०। उथपै—औरोंमें। २ थपे—ज०। ३ फटै—ह०, व०, ज०। फटैं—छ०, ष०, श०, पं०।

बूढ़ भये बलि मेरिही[४] बार कि हारि परे बहुतै नत पाले ॥१७

शब्दार्थः—थपे = स्थापित किये हुये; जमाये हुये, बसाये हुये। उथपे = उखाड़े, उजाड़े। थपना = बसाना। थिर = स्थिर, अचल। घाले = नष्ट किये, उजाड़ डाले। साल (शाल) = पीड़ा। साले = पीड़ा देते हुये, पीड़ारूपसे। फटैं = छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, निवृत्त होजाते हैं। मकरी = मकड़ी हारि परे = थक गये। बहुतै = बहुत से। नत = प्रणत, शरणागत। पाले = पालन करते-करते।

पद्यार्थ—हे कपि श्रीहनुमान्‌जी! आपके बसाये-हुये-को (औरकी कौन कहे) महान् समर्थ भगवान् शंकर भी नहीं उजाड़ सके। और जिन घरोंको आपने उजाड़ डाला, उन्हें (फिर) कौन अचल बसा सकता है? (अर्थात् किसीमें यह सामर्थ्य नहीं)। हे गरीबनिवाज (दीन-दुखियोंको निहाल करनेवाले, उनपर कृपा करनेवाले)! आपके कृपा-पात्र शत्रुओं-के हृदयमें पीड़ारूप होकर विराजते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि आपका नाम लेनेसे सभी सकट और शोच मकड़ीके जालेके समान अनायास ही निवृत्त हो जाते हैं। आपकी बलिहारी! क्या आप मेरीही बार बूढ़े होगये या बहुतसे प्रणतजनोंका पालन करते-करते थक गए? (इसीसे मेरे संकट-शोचको नहीं मिटाते)। १७।

टिप्पणी—१ 'तेरे थपे उथपे न महेस…'—विभीषण इन्हीके बसाये हुए और रावण उजाड़े हुए हैं। महेश रावणके इष्टदेव थे, किन्तु उन्होंने रावणको उजाड़े-जाते देखकर भी उसकी रक्षा न की। ये श्रीरामाश्वमेधयज्ञके घोड़ेकी रक्षामें

४ मेरिही--६० । मेरिहि--औरौं में ।

थे। वीरमणिने घोड़ा बाँध लिया। महेश पार्षदों सहित भी आकर उसकी ओरसे लड़े, फिरभी वीरमणिको घोड़ा लौटाकर शरणागत होना ही पड़ा। जब ऐसे महान् ईश (समर्थ) भी इनके कियेको अन्यथा नहीं कर सकते, तब दूसरा कौन है जो कर सके। (पद ३ में इनका सामर्थ्य देखिए)।

२ 'तेरे निवाजे···बैरिनके उर साले'— कृपापात्र सज्जनों को फूलते-फलते देख दुष्टोंके हृदयमें विषाद होता है,–('खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी। ७।३९।३।')। वश चलता तो अनिष्ट करके अपने हृदयकी जलन को बुझा लेते; यह सामर्थ्य न होनेसे हनुमान्‌जीके कृपापात्र उनके हृदयमें कांटेकी तरह चुभा करते हैं। १५ (४) भी देखिये।

३ 'बूढ़ भये···' इति। शक्ति बुढ़ापेमें कम होजाती है और युवावस्थामें बहुत अधिक परिश्रम पड़नेपर थकावट आजाती है। इन्हीं दो कारणोंको लेकर यहाँ ये व्यंग वचन कहे गये हैं, नहीं तो ये तो अजर अमर हैं—('अजर अमर गुन-निधि सुत होहू'—यह वरदान श्रीसीताजीका दिया हुआ है) —इनमें बुढ़ापा और थकावट कहाँ ? विनयमें भी ऐसेही कड़े वचन कहे हैं—'सो बल गयो किधौं भये अब गर्व गहीले। ३२।' बहुत दुखी होनेपर ऐसे वाक्य निकलते ही हैं।*

---

* ☞ स्मरण रहे कि यह खोटी-खरी उपालम्भके रूपमें है। यहाँ विचार करनेकी बात यह है कि सर्वसमर्थ हनुमान्‌जी अयोग्य तो हो नहीं सकते। उपालम्भमें योग्य समझते हुये उसकी उपेक्षाकी निन्दा भी की जाती है। इसका तात्पर्य केवल उस समर्थको पानीपर चढाना होता है, जिससे उसे कार्य कर डालनेका उत्साह पुनः उत्पन्न हो। वही उपालम्भ यहां है।

१८—सवैया

सिंधु तरे बड़े बीर दले खल जारे हैं लंक-से बंक मवासे ।
तैं रन[1]-केहरि केहरि-के बिदले अरि कुंजर छैल छवा-से ॥
तो सो[2] समत्थ सुसाहेब[3] सेइ सहै तुलसी दुख दोष दवा-से ।
बानर बाज बढ़े खल खेचर लीजत क्यों[4] न लपेटि लवा से ॥

शब्दार्थ—दलना = रगड़ मसल डालना; मर्दन करना। बंक = दुर्गम; जिस तक पहुँच न होसके। विकट (व०)। मवासा = रक्षाका स्थान; क़िला; गढ़। केहरि (केसरी) = सिंह। केहरि के = केसरी वानरके पुत्र। बिदले = विशेष रूपसे दल डाले; विदीर्ण वा टुकड़े-टुकड़े कर डाले; नष्ट कर डाले। अरि = शत्रु। कुंजर = हाथी। छैल = सुन्दर बने ठने युवावस्थावाले। छवा = किसी पशुका बच्चा; बच्चा। से = समान, सरीखा। तो सो = तुझ सरीखे, तुम-सा। समत्थ = समर्थ, पराक्रमी, सामर्थ्यवान्। सेइ = की सेवा करते हुये। दुख दोष = आत्मजनित मानसिक भाव जिसकी प्रेरणासे दुष्कर्ममे प्रवृत्ति होती है उसका नाम 'दोष' है। इन्हींके कारण पाप होते हैं पापका फल दुःख है। दवा = वनाग्नि, वनमें लगनेवाली आग। बाज = प्रसिद्ध शिकारी पक्षी जो आकाशमें उड़ती हुई छोटी-मोटी चिड़ियों या कबूतरों आदिको झपटकर पकड़ लेता है। लवा = तीतरकी जातिका एक पक्षी जो तीतरसे बहुत छोटा होता है, जाड़ेमें इसके झुंडके झुंड बहुत दिखाई देते हैं। खेचर = आकाशचारी,

---

१ नर केहरि--श० । २ सो--ह०, श० । सों--छ०, च०, व०, पं० ।
३ सुसाहेब--ह०, व० । सुसाहिब--च०, छ०, ज०, श०, पं० ।
४ क्यौं--ह० ।

पच्छी। लीजत = लेते। लपेटना = पकड़में लाना, ग्रसना।

पद्यार्थ—आप समुद्रको लाँघ गये, बड़े-बड़े वीर दुष्टोंका मर्दन किया और लंका-जैसे विकट किलेको जला डाला है। हे केसरीके रणसिंह पुत्र! आपने सुन्दर बने-ठने युवावस्थावाले शत्रुरूपी हाथियोंको रणमें पशुओंके बच्चों-सरीखा विदीर्ण कर डाला। आप सरीखे समर्थ सुस्वामीकी सेवा करता हुआ तुलसीदास दावानल सरीखे दुःख-दोषको सहन करे! (क्या यह आपको शोभा देता है?)। हे वानररूपी बाज! दुष्टरूपी पक्षी बढ़ गये हैं, आप उन्हें लवाके समान क्यों नहीं ग्रस लेते? ।१८।

टि०—१ 'तै रण-केहरि···बिदले अरि-कुंजर-छैल' इति। इस पदमें सिंधोल्लघनसे लेकर लंकादहन तकका प्रसंग कहा है, बीचमें 'बड़े बीर दले खल' कहनेसे सूचित हुआ कि अशोकवन-में जो युद्ध हुआ, उसमें जो वीर मारे गए, उन्हींकी यहाँ चर्चा है। ये वीर हाथीके समान बड़े विशालकाय और बलमदोन्मत्त थे। तथा सब युवावस्थाके थे और स्वर्णाभूषणोंसे सजे हुए थे। वाटिकाविध्वंस समाचार पाकर पहले रावणने अपनेही समान वीर अस्सी हजार किंकर नामधारी राक्षसोंको भेजा। उनके मारे-जानेपर प्रहस्त-पुत्र जाम्बुमाली (जो लाल फूलोंकी माला लाल वस्त्र, गलेमें हार और कानोंमें कुंडल पहने था। वा० ५।४४।२) भेजा गया। हनुमान्‌जीने परिघ घुमाकर उसकी छातीमें ऐसा मारा कि 'न तो उसके मस्तकका पता लगा, न भुजाओंका और न घुटनों आदि का'। तब मन्त्रीके सात पुत्र भेजे गए। ये भी आभूषणोंसे भूषित थे'— वा० ५।४५।६)। हनुमान्‌जीने उस सेनामें 'किन्हींको थप्पड़से मार गिराया, किन्हीं-

को पैरोंसे कुचल डाला, किन्हींको नखोंसे फाड़ डाला, कुछको छातीसे दबाकर कचूमर निकाल दिया, कुछको जंघोंसे दबोच-कर मसल डाला। (वा० ५।४२,४३,४४)।—यही 'विदले' का वास्तविक अर्थ है। तत्पश्चात् प्रघस आदि पांच वीर भट भेजे गये। ये सब भी मारे गये। तिलके समान इनके खंड-खंड हो-गये। अब अक्षकुमार भेजे गये (ये गलेमें पदक, बाहुमें बाजू-बन्द, कानोंमें कुंडल पहने थे)। हनुमान्जीने उसकी सेना और रथ आदिको नष्टकर उसके दोनों पैर पकड़कर हजारों बार घुमाकर उसे युद्धभूमिमें पटक दिया, जिससे उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े होगया, इत्यादि (५।४७।३५-३६)।—इन उद्ध-रणोंसे 'छैल' और 'विदले' के भाव स्पष्ट हो जाते हैं।

मतवाले हाथियोंको देखकर सिंहकिशोरको उत्साह होता है,—'मनहुँ मत्तगजगन निरखि सिंहकिसोरहि चोप। १।२६७।' वही रूपक यहाँ है। किंकर 'युद्धाभिमनसः' युद्धाभिलाषी थे, प्रहस्तपुत्र 'समरे सुदुर्जयम्' था, मंत्रीपुत्र 'परस्पर जयैषिणः' अर्थात् परस्पर होड़ लगाकर विजय पानेकी इच्छावाले थे, और अक्ष 'समरोद्धतोन्मुखं' था। (वा० सुं० ४२।२६,४४;४५। २;४७।१)।—सभी बलके घमंडमें भरे हुए थे—'युधि वीर्य-दर्पितः।४७।२०।' अतः इनको 'अरि कुंजर' कहा। जैसे-जैसे अधिक बलवान् आते, वैसे-वैसे श्रीहनुमान्जी अधिक हर्ष और उत्साहसे भर जाते और गर्जना करते थे।—'ननाद हर्षाद् घनतुल्य निःस्वनः।४७।१६।' अतः इनको 'केहरि-के' कहा। केहरि = केसरी = सिंह। कवितावलीके—'देखें गजराज मृगराजु ज्यों गरजि धायो वीर रघुबीरको समीरसुनु साहसी। ६।४३' तथा 'रजनीचर मत्तगयंद घटा बिघटै मृगराजके साज लरै। झपटै भट कोटि महीं पटकै गरजै रघुबीरकी सौंह करै। ६।३६।'

—इन उद्धरणोंसे भाव और भी स्पष्ट हो जाते हैं।

२ (क) 'दुख दोष दवा से':—दुःख और दोष दोनों दावानल समान हैं। 'दोषरूपी दावानलसे प्राप्त दुःख'—यह अर्थ भी होता है। पद ३२ के 'सोध कीजै तिनको जो दोष दुःख देत हैं' तथा पद १६ के 'दोष सुनाये तें आगेहु को हुसियार ह्वैहौं' के अनुसार यह अर्थ होगा। (ख) 'लीजत क्यों न लपेटि लवा से':—बाज झपटकर लवा आदिको चंगुलमें इस तरह लपेट लेता है कि वे निकल नहीं सकते।—'लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू। २।२३०।८।' इसी तरह मेरे दुःख और दोषरूपी दुष्ट-पक्षियोंको ग्रस लीजिये। एक भी रहने न पावे। अथवा, यह अनुमान करते हैं कि दुष्ट लोगों द्वारा यह उपद्रव खड़ा हुआ है, अतः उन दुष्टोंको यहाँ पक्षी कहा। पद ४२ के 'व्याधि भूत जनित उपाधि काहू खल की'—से यह अर्थ भी होता है।

१९—सवैया

अच्छ-बिमर्दन कानन भानि दसानन आनन भानिहारो[1] ॥
बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न से कुंजर केहरि-वारो॥
राम-प्रताप हुतासन कच्छ बिपच्छ समीर समीरदुलारो।
पाप तें[2] साप तें[3] ताप तिहूँ तें[4] सदा तुलसी कहँ सो रखवारो॥

शब्दार्थः—अच्छ = अक्षकुमार; रावणका एक पुत्र। विमर्दना = अच्छी तरह मसल डालना; मार डालना। कानन = अशोकवन। दशानन = दशमुखवाला रावण। भानिहारो = तोड़ने भंजन करनेवाले। भानना = भंजन करना; मुंह-तोड़

१ भा न निहारो--व०, छ०। २, ३, ४, तें--व०, छ०, च०। ते--श०। २, ३, तैं; ४ ते--ह०। २, ४, तैं, ३ ते--पं०।

उत्तर देना (रा०) । मान मर्दन करना (ह०)] । वारिदनाद =मेघनाद । अकंपन = रावणका एक पराक्रमी पुत्र और सेनापति । बारो = बालक, जो अभी सयाना नहीं हो । केहरिबारो = सिंहकिशोर । हुताशन = अग्नि । कच्छ = तृणपुंज; तिनकेका समूह । (ह०, ज०) । = तनुका पेड़ जो जल्दी जलता है (तु० ग्रं०) । 'कच्छ' नामका वृक्ष वनमें होता है जो अग्नि लगनेपर गीलाही सूखेके समान जल जाता है । (वै०) । विपच्छ (विपक्ष) = शत्रु, विमुख, विरोधी । दुलारा = लाड़ला; प्रिय पुत्र । ताप तिहुँ = आध्यात्मिक वा दैहिक, आधिदैविक वा दैविक और आधिभौतिक वा भौतिक-ये तीनों प्रकार के ताप । शारीरिक एवं मानसिक कष्ट 'दैहिक'; शीत, उष्ण, वर्षा, बिजली आदिसे प्राप्त होनेवाले 'दैविक' और पशु, पक्षी, सर्प, बिच्छू, भूत, प्रेत, राक्षस आदि द्वारा प्राप्त दुःख 'भौतिक' हैं । रखवारा = रक्षा करनेवाले ।

पद्यार्थ—अक्षकुमारका विशेषरूपसे मर्दन करनेवाले, अशोकवनको विध्वंसकर रावणका मुख भंजन करनेवाले, मेघनाद, अकंपन और कुंभकर्णरूपी हाथियोंके लिये सिंहकिशोररूप, शत्रुरूपी तनुवृक्ष एवं तृणसमूहको जलानेवाले रामप्रतापरूपी अग्नि (को विशेष प्रज्वलित एवं प्रचंड करने) के लिए पवनरूप जो पवनदेवके लाड़ले पुत्र हैं, वे ही (मुझ) तुलसीदासको (अपने किये हुए) पापसे, (दूसरों) के शापसे और तीनों तापोंसे सदा रक्षा करनेवाले हैं ।१६।

टिप्पणी—१ 'अक्ष विमर्दन'—हनुमान्‌जीके द्वारा युद्धभूमिमें पटके जानेपर उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छातीके टुकड़े-टुकड़े होगए । शरीरकी हड्डियाँ चूर चूर होगईं । आँखें निकल आईं, अस्थियोंके जोड़ टूट गये और नस नाड़ियोंके

बंधन टूट गये। इस तरह वह मारा गया। [वा० ५।२७।३६]। —उसीको यहाँ 'बिमर्दन' से जना दिया है।—इससे रावणके हृदयमें बहुत बड़ा भय उत्पन्न होगया।—'रक्षोऽधिपतेर्महद्भयम्। वा० ५।४७।३७।'

२ 'कानन भानि दसानन...' इति। अशोकवनका विध्वंस सुनकर रावण क्रोधमें भर गया था। उसके आँसू निकल पड़े थे।—'तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः। वा० ५।४२। २३।' उसने बहुत बलवीर्यसम्पन्न सेनापतियों और सेनाको भेजा। इतने वीर सेनापतियों, अपार सेना और महाबली पुत्र अक्षकुमारका नाश भीषण गर्जन और ललकार कर-करके अकेले एक वानरने कर डाला। रावणके उपाय निष्फल हुए। वह रो दिया। उसे महान् भय प्राप्त हुआ। फिर रावणकी सभा-में जानेपर भी निःशंक रहे। उसके देखते लंकाको जला डाला, वह इनका एक बाल भी बाँका न कर सका।—यह मान-मर्दन ही 'मुखभंजन' है। 'मान-मद-दवन' पद १ (७) में देखिये।

३ 'बारिदनाद...कुंजर केहरिबारो'—हाथियोंको देख-कर सिंहके बच्चेको बड़ा उत्साह होता है। वह उनपर वार भी करता है। वारसे घायल होकर शिकारी हाथी कभी-कभी प्राण बचा भी लेते हैं। वैसेही मेघनाद आदिको देख-देखकर उत्साह-में भर-भरकर हनुमान्‌जी गर्जन कर-करके दौड़े और वार किया था। मेघनादको देखकर—'कटकटाइ गर्जा अरु धावा।'... 'मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥ ५।१९', 'गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥...ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥ दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना। ६।४२।' अकंपनको देखकर महान् अट्टहास करके वे उसकी ओर दौड़े और गरजकर उसे मार ही डाला।

कुंभकर्णको भी 'देखें गजराज मृगराजु ज्यों गरजि धायो। क० ६।४३।'—(शेष भाव पद ७ (३) में आचुके हैं)।

४ 'रामप्रताप हुतासन···समीर समीरदुलारो'—पवनका सहारा पाकर अग्नि भड़क उठती है, वैसेही हनुमान्‌जीका सहारा पाकर श्रीरामजीका प्रताप प्रज्वलित अग्निके समान प्रदीप्त हो गया था। हनुमान्‌जीने लंकामें श्रीरामजीके बलका डंका पीटकर—('जयत्यतिबलो रामो···' घोषणा द्वारा) और अपने कार्योंसे दिखाकर उनके प्रतापका आतंक छा दिया था। पद ७ (३) देखिये। 'समीरदुलारो' नाम यहाँ बड़े मार्केका है। पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख पवनदेव पीछे-पीछे साथ गये थे। हनुमानजी अपने तथा पिताके बलसे शीघ्र सूर्यके समीप पहुँच गये। (वा० ३।३५।२८-२६)। वैसेही हनुमान्‌रूपी पवनका सहारा पाकर श्रीरामप्रतापरूपी अग्निने शीघ्र ही शत्रुओंका नाश किया।—रूपक इतनेमें ही है। सिंधुतरण, लंकादहन, सेतुबंधन, अंगद-पदरोपण, वानरोंका राक्षसोंपर विजय पाना, मेघनाद-वध आदि सभी कार्योंके संपादनमें रामप्रतापका हाथ था। रामचरितमानसमें सबोंने पढ़ा है। ह० ना० १४।७७ में भी हनुमानजीने कहा है—'दह्यमानशत्रुश्रेणीपतङ्गा ज्वलति रघुपते त्वत्प्रतापप्रदीपः।' अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! शत्रुओंकी पंक्ति जिसमें जल मरनेवाले पतिंगे हैं ऐसा आपके प्रतापका दीपक प्रज्वलित है।

५ 'पाप तें साप तें···रखवारो'—तीनोंसे रक्षा करते हैं, इस प्रकार कि पूर्वकृत पाप लगने नहीं पाते (उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता), वर्तमान् कालमें कोई पाप होने नहीं पाते। देवी-देवादिका कोप होने नहीं देते कि वे शाप दें और यदि शाप भी दें, तो उससे रक्षा करेंगे।

२०—घनाक्षरी (ह०, पं०, ज०)

जानत जहान 'जन हनुमान को निवाज्यौ'[1],
मन अनुमानि बलि बोलि[2] न बिसारिये* ।
सेवा जोग तुलसी कबहुँ[4] कहूँ चूक परी,
साहेब सुभाव[5] कपि साहेब[6] सँभारिये ॥
अपराधी जानि कीजै साँसति[7] सहस भाँति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिये ।
साहसी समीर के, दुलारे रघुबीर जू के,
बाँह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥२०

शब्दार्थ—जहान = संसार। निवाज्यौ = कृपापात्र। बोलि = अपनाकर, शरणमें लेकर-(ह०, ज०)। = वचन देकर; बुलाकर। बिसारना = भुला देना। जोग = संयोगमें; संबंधमें।—(ह०, ज०)। चूक = भूल; गलती। साहेब सुभाव = स्वामियोंका जो स्वभाव होता है उसको; स्वामित्वके स्वभावको। (ह०, ज०)। कपि साहेब = श्रीमान् कपिजी । सँभारना = स्मरण

---

1 'हनुमान को निवाज्यो जन'--छ०, च०, व०, पं०। जन ··निवाज्यौ--ह०, ज०, श०, मु०। २ निवाज्यौ--ह०, छ०, ज०, मु० । निवाज्यो--च ,श०, व०, पं० । ३ बोल--छ०, च०, व०, पं० । बोलि--ह० ज०, श०, मु०। ४ कबहुँ कहूँ--ह०, श०, पं० (कहुँ)। कबहूँ कहूँ--ज० । कबहूँ कहाँ--छ०, च० । कबहुँ कहा--व० । ५ सुभाव--ह०, ज०, व०, मु० । सुभाव—छ०, च०, श०, पं० । ६ साहिबी--व० । ७ साँसति--छ०, च०, श०, ह० । सासति--व०। *ह० में 'यै', छ०, च० में 'ए' और व०, ज०, श० में 'ये' तुकान्त मे है।

करना। साँसति = दंड। माहुर = विष। निवारना = दूर करना, मिटाना।

पद्यार्थ—'संसार जानता है कि (यह) सेवक श्रीहनुमान्-जीका कृपापात्र है'—इसे मनमें विचार करें। मैं वलिहारी जाता हूँ, [सेवकको] अपनाकर [अब] न भुला दीजिये। सेवाके संयोगमें कभी* कहीं [मुझ] तुलसीदाससे चूक हुई होगी। हे कपि साहेब ! स्वामित्वके स्वभावको स्मरण कीजिये। अपराधी जानकर सहस्रों प्रकारसे दण्ड दीजिये। [किन्तु] जो लड्डू देनेसे ही मर सकता हो, उसे विष देकर न मारिये [अर्थात् मारना उचित नहीं]। हे पवनदेवके साहसी पुत्र ! हे श्रीरघुवीरजीके दुलारे ! हे महावीर ! मेरे वाँहकी पीड़ाको शीघ्रही मिटाइये।२८।

टिप्पणी—१ (क) 'जानत जहान…निवाज्यौ'—श्रीहनुमानजीकी इनपर कृपा थी, यथा 'तुलसीपर तेरी कृपा निरुपाधि-निरारी। वि० ३४।' कैसी असीम कृपा इनपर थी, सुनिये।—प्रथम तो इनको प्रत्यक्ष दर्शन दिये, श्रीरामजीके दर्शन कराये—[एक वार सामने आनेपर भी ये चूक गये थे, फिर भी दूसरी वार दर्शन कराये], तत्कालीन मुसलमान राजाने जब इन्हें कैद किया तव आपने वानरों द्वारा उपद्रव मचवाकर इनको छुड़ाया। कलिने सताया, तव विनयपत्रिका द्वारा इनकी रक्षा की, इत्यादि।--इनके समयमें ही ये सव कृपायें संसारमें फैल गई थीं। (ख)—संसार भरको विदित है, इस वातको विचारनेको कहते है। भाव यह कि वड़े स्वामियोंको अपने निवाजेकी लाज होती है, इस समय कृपा न करनेसे संसार क्या कहेगा ? कितना

* अर्थान्तर—'क्या तुलसी कभी सेवाके योग्य था ?'—(व०, रा०)।

अपयश होगा कि शरणमें लेकर त्याग देते हैं। 'रीझि-रीझि दीन्हे बर खीझि-खीझि घाले घर···'—वाली बात यहाँ भी लागू हो जायगी। (ग)—'बलि बोलि'—पद २६ का 'कीन्ही है सँभार-सार अंजनीकुमार बीर' तथा पद २१ का 'बलि बारे तें आपनो कियो' ही यहाँका 'बोलि' है। विशेष 'टूकनि को घर-घर डोलत कँगाल बोलि' पद २६ में देखिये। 'बलि'—'मैं बलिहारी जाता हूँ' में भाव यह है कि जैसे बने आप कृपा करके मेरी यह विनती स्वीकार करें, 'अपनाये-हुए-को भुलावें नहीं'। मिलान कीजिये —'अपराधी तौ आपनो तुलसी न बिसरिये। वि० २७१।', 'आपनो बिसारि हैं न मेरेहूँ भरोसो है' (पद २६)।

२ 'सेवा जोग···' इति। सेवाके ३२ अपराध कहे गये हैं। अतः सेवामें कहीं चूक होजाना असंभव नहीं, अवश्य होगई होगी। परन्तु चूक होनेपर स्वामी सेवकको त्याग नहीं देते, अपने बड़प्पनको विचारकर उसका सुधार करते हैं, जिसमें फिर चूक न हो थोड़ा-सा दंड देकर फिर उसपर कृपा ज्यों-की-त्यों बनाये रखते हैं। यथा 'सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। १।८६।३।'—इस 'साहेब सुभाव' का स्मरण कराते हुये कहते है कि 'अपराधी जानि कीजै सासति सहस भाँति'। दंड अगणित भाँतिके हैं, सभी प्रकारसे आप दंड देसकते हैं. यह कहकर बताते हैं कि वह दंड किसको कैसा दिया जाना चाहिये। जो लड्डू देनेसे ही मर जाय उसे विष देकर न मारना चाहिये,—('जो मधु मरै न मारिए माहुर देइ सो काउ। दो० ४३३।'),—यह कहावत प्रसिद्ध है। इसके अनुसार दंड दीजिये। किंचित् भौंह टेढ़ी करके डाँट देनेसे ही मैं काँप जाता,—यह स्वामीदत्त दंड 'मोदक' है। सेवकको त्याग देना—('साहेब सेवक नाते ते हातो कियो।' पद १६), उसको

भुला देना, संकटापन्न देखकर भी उसकी आर्त पुकारपर ध्यान न देना—माहुर देकर मारना है। दासको कैसा दंड दिया जाता है इसका 'कृपा कोप बधु बँधब गोसाईं। मोपर करिय दास की नाईं। १।२७९।'—इस वाक्यमें संकेत है।

३ 'दुलारे रघुबीरजूके' में भाव यह है कि आप प्रभुके इतने प्यारे हैं कि वे आपको यहाँ अपना प्रतिनिधि बनाकर रख गये, जिसमें आप उनके भक्तोंकी पुकारपर उनकी रक्षा करें। मैं भी श्रीरामका दास हूँ और आर्त हूँ, आप 'रामहित रामभक्तानुवर्त्ती' हैं, अतः आप मेरा दुःख दूर कीजिये। 'साहसी समीरके' और 'महावीर' से आपको बाहुपीर निवारणके लिए पवनदेवसे भी अधिक समर्थ दिखाया।—'कवन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहि होइ तात तुम्ह पाहीं। ४। ३०।५।'

२१—घनाक्षरी

बालक बिलोकि बलि बारे तें[1] आपनो कियो,
दीनबंधु दया कीन्हीं[2] निरुपाधि न्यारियै*।
रावरो भरोसो तुलसी के रावरोई बल,
आस रावरीयै दास रावरो बिचारियै ॥
बड़ो बिकराल कलि काको[3] न बिहाल कियो,
माथे पगु बली को निहारि सो निवारियै।
केसरीकिसोर रनरोर बरजोर बीर,

---

१ ते--ह०, श०। तें--छ०, च०, व०, पं०। २ कीन्ही-ह०, पं०। कीन्हीं--छ०, च०, व०, श०। ३ को को--पं०।

बाहु[४] पीर राहुमात ज्यौं[५] पछारि मारियै॥२१

शब्दार्थ—बिलोकि=देखकर। बारे ते=बाल्यावस्थासे, बालकपनसे। आपनो कियो=अपना बना लिया; शरणमें लिया। निरुपाधि=धर्मचिन्ता उपाधि रहित-(वै०)।=बाधा-रहित-(श० सा०)।=बेप्रयोजन (ह०)।='जिसमें किसी प्रकार हेर-फेर होता ही नहीं'-(दीन)। न्यारियै=न्यारी (निराली, अनोखी, विलक्षण) ही। रावरो=आपका। रावरीयै, रावरोई=आपका ही। विकराल=बहुतही भयंकर। बिहाल=विह्वल, व्याकुल, बेचैन। पगु=पैर। निहारि=देख-कर। निवारियै=हटाइये। राहुमात=छायाग्रहणी सिंहिका राक्षसी जो समुद्रमें रहकर लंकाकी रक्षा करती थी। पछारि= पछाड़कर; गिराकर।

पद्यार्थ—हे दीनबंधु! बलिहारी जाता हूँ। बालक देखकर आपने (मुझ तुलसीदासको) बालपनसे ही अपना बना लिया है और निराली उपाधिरहित कृपा की। तुलसीदासको आपका ही भरोसा, आपका ही बल और आपकी ही आशा है। वह आपका दास है। इस बातको विचार करें। कलि बड़ा विकराल है। उसने किसको व्याकुल नहीं किया? (अर्थात् सबको व्या-कुल कर दिया, कोई बचा नहीं)। उस बलवान्का पैर मेरे मस्तकपर देखकर उसे हटा दीजिये। हे केसरीकिशोर! हे रणरोर! हे महाबलवान् वीर! मेरे बाहुकी पीड़ाको सिंहिकाकी भाँति पछाड़ मारिये।२१।

टिप्पणी—१ (क) 'बालक बिलोकि···आपनो कियो',

४--बाँहु-व०। ५ ज्यौं--ह०,छ०,व०। ज्यों--च०,श०,पं०। *तुकान्तमें 'यै'-[ह०], 'ए' [छ०, च०] और 'ये' [व०, ज०, श० में]।

इसीको आगे पद २९ में "टूकनि को घर-घर डोलत कँगाल बोलि बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। कीन्ही है सँभार-सार अंजनीकुमार वीर आपनो विसारिहैं न मेरेहू भरोसो है"—इन शब्दोंसे स्पष्ट किया है। इस बाधारहित कृपा-का उल्लेख विनय ३४ में भी है।—'तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी।' (ख)—'रावरो', 'रावरोई' और रावरीयै' से अन्याश्रयरहित अनन्यता दिखाई। पद १४ के 'मनकी बचनकी करमकी तिहूँ प्रकार तुलसी तिहारो' का भाव इसमें है। पूर्वार्धमें स्वामीका अपनी ओरसे शरणमें लेना कहा, और यहाँ अपनी ओरकी अनन्यता कही।—अंतमें न्याय उन्हींपर छोड़ते हैं कि 'विचारिये'। स्वयं अपनाये-हुएकी एवं अनन्यगतिककी रक्षा उचित है। यथा 'बाँह बोल दै थापिये जो निज बरिआई। बिनु सेवा सो पालिये सेवक की नाई' / वि० ३५।', 'मन क्रम वचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई। २।७२।८।'

२ 'काको न विहाल कियो ' इति। (क)—कलिने सारे संसारको संतप्त कर रक्खा है,—"दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है॥...कलि करनी वरनिये कहाँ लों।' (वि० १३९)। परीक्षित महाराज तथा नलके साथ छल करके उनको दुःख दिया (श्रीमद्भागवत, महाभारत एवं वि० २२०, २६९ में इनका उल्लेख है। यहाँ उसका प्रयोजन नहीं है)। गुसाईंजीको कलिने बहुत सताया था, 'विनय-पत्रिका' का निर्माण उसीके कारण हुआ था। अतः यह सोचकर कि यह पीड़ा कलिकृत है, वही मुझे इस पीड़ा द्वारा कुचल डालना चाहता है, वे उसके इस आक्रमणसे रक्षाकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं-'निहारि सो निवारिये।' अर्थात् देख लीजिये कि वही तो इस बाहुपीरका कारण नहीं है, यदि है तो वह तो आपकी क्रोधदृष्टिसे ही भाग जायगा, (यथा 'देखिहै हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय॥ अरुन-मुख भ्रू-विकट

पिंगल नयन रोष कषाय। बीर सुमिरि समीरको घटिहै चपल चित चाय। वि० २२७।')। अतः केवल उसकी ओर 'निहार' देनेकी प्रार्थना की। (ख)—'माथे पग'—'किसीके साथ बहुत उद्दंडताका व्यवहार करना,' 'किसीको कुचल डालनेका सामर्थ्य अपनेमें समझना' इत्यादि अर्थोंमें इसका प्रयोग होता है। श्री-हनुमान्‌जीने श्रीसीताजीसे कहा है कि मैंने रावणके सिरपर पैर रखकर लंकापुरीमें प्रवेश किया है,—'कृत्वा मूर्ध्नि पद-न्यासं। वा० ५।३४।३६।'

३ 'राहुमातु ज्यों…'—सिंहिका राहुकी माता है। जैसे राहु पूर्णचन्द्रको ग्रास कर लेता है, वैसेही सिंहिकाने विशाल-काय श्रीहनुमान्‌जीको अपनी छायाग्रहिणी शक्तिसे खींचकर अपना ग्रास बनानेके लिए उनके शरीरके बराबर विकराल मुख फैलाया। यह देख इन्होंने उसके मर्मस्थानोंको अपना लक्ष्य बना अपने शरीरको संकुचितकर उसके मुखमें प्रवेश करके उसके मर्म स्थानोंको विदीर्ण कर डाला प्राणोंके आश्रयभूत उसके हृदयस्थलको ही नष्ट कर दिया। वह मरकर जलमें गिर पड़ी। (वा० ५।१।१८६–१९८)। अध्यात्म रा० में तो जलमें कूदकर बड़े क्रोधसे उसे लातोंसे ही मार डालना कहा है,—पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा। ५।१।३८' 'पछारि मारिये' में भाव यह है कि सिंहिकाका दाँव लगनेके पूर्व ही आपने उसे मार गिराया। वैसेही मेरे प्राणोंका ग्रास करनेके पूर्व ही बाहुपीड़ाको नष्ट कर डालिये।

२२—घनाक्षरी

उथपे थपन थिर थपे उथपनहार,

केसरीकुमार बल आपनो[१] सँभारिये* ।
राम के गुलामनि को कामतरु रामदूत,
मोसे दीन दूबरे को[२] तकिया तिहारिये ॥
साहिब[३] समर्थ तो सों[४] तुलसी के माथे पर,
सोऊ अपराध बिनु बीर बाँधि मारिये ।
पोखरी बिसाल बाहु[५] बलि बारिचर पीर,
मकरी ज्यौं[६] पकरि कै[७] बदन बिदारिये ॥२२

शब्दार्थ—थपन = स्थापन, ठहराने या जमानेका काम । उथपनहार = उखाड़ने वा उजाड़नेवाले । गुलामनि = गुलामों, सेवकों । तकिया = आश्रय, भरोसा, आसरा । पोखरी = तलैया। बिशाल = बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी । बारिचर = जलचर; जलमें रहनेवाले जीवजन्तु । मकरी = मगरकी मादा; मगरिनी । बदन = मुख । बिदारना = फाड़ डालना । बाँधि = बाँधकर; बेबस करके । माथे पर = संरक्षक, रक्षा करनेवाला ।

पद्यार्थ—उजड़े-हुएको स्थिर बसानेवाले और अचल बसे-हुए-को उजाड़नेवाले केसरीकुमार ! आप अपने (इस) बलका स्मरण कीजिये । हे श्रीरामचन्द्रजीके सेवकोंके लिये कामनाओंके पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष (रूप) रामदूत ! मुझ-से दीन दुबलोंको आपका ही आसरा-भरोसा है । हे वीर ! तुलसी-के संरक्षक आप-जैसे समर्थ स्वामीके रहते हुए और वह भी

१ आपनौ । २ कों--ह० । ३ साहिब- ह०, छ०, च०, पं० । साहेब--ब०, श० । ४ सौं--ह०, व०, मु० । सो--छ०, च०, श० । ५ बाँहु--ब०, श० । बाहुँ--छ० । ६ ज्यौ--ह०, छ०, पं० । ज्यों--च०, ब०, श० । ७ के--श० । * तुकांत में यै- [ह०] । ए- [च०, छ०] । ये--ब०,श० ।

बिना अपराधके (तुलसी) बाँधकर मारा जा रहा है। मैं बलिहारी जाता हूँ, आप मेरी बाँहरूपी विशाल तलैयाकी (अर्थात् उसके जलमें रहनेवाली) पीड़ारूपी जलचरको मगरिनीके समान पकड़कर उसका मुख फाड़ डालिये ।२२।

१ (क 'केसरीकुमार'—भाव कि महाकपि केसरीने शम्बसादन दैत्यका वधकर देवर्षियोंको सुखी किया, उन्हींके आप क्षेत्रज पुत्र है। (पद ६ देखिये)। (ख,— बल आपनो सँभारिये'—बलका स्मरण कराते है, इसका भी कारण है। ब्रह्माजीसे सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होनेका वरदान पाने पर ये शान्तचित्त महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते, अग्निहोत्रके साधनभूत स्रुक् आदिको तोड़ डालते और बल्कलोंको चीर-फाड़ डालते थे । अन्ततोगत्वा भृगु और अंगिरावंशी महर्षियोंने इन्हें शाप देते हुए कहा,— 'वानर ! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शापसे मोहित होकर, तुम दीर्घकालतक भूले रहोगे। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्त्तिका स्मरण दिला देगा तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।" (वा० ७।३६।२६,३०,३३–३५) ।—इस शापके प्रभावसे वे अपने तेज और ओजको भूले हुए न हों, यह समझकर स्मरण दिला रहे हैं। (ग)—'कामतरु' पद ६ (७) मे देखिये। 'रामके गुलामनि···' —भाव यह कि मैं भी श्रीरामजीका गुलाम हूँ, अतः मुझे भी भरोसा है कि आप मेरी कामना पूर्ण करेंगे। (घ)— बाँधि मारिये···'—बाहुमें पीड़ा उत्पन्न करके बेबस कर देना ही 'बाँधना' है। 'अपराध बिनु' पर पद १६ [१] देखिये। कौन मारता है ? यह पिछले पदमें बता आये है,—'बड़ो बिकराल कलि काको न विहाल कियो'—इसीसे यहाँ नाम नहीं दिया।

२ 'पोखरीबिसाल बाहु···'—द्रोणाचलको जानेमें हिमा-

लयकी तराई मार्गमें पड़ती है। वहाँपर एक विशाल तालाब था, जिसके पास कालनेमिने अपनी मायासे आश्रम और तपोवन रचा था। इस तालावमें एक मगरिनी रहती थी [जो पूर्व एक अप्सरा थी, किसी मुनिके शापसे वह महामायाविनी घोररूपिणी मकरी होगई थी]। [अ० रा० ६।७।२२;२३-२५]। इसका पूर्व नाम धान्यमाली था। ह०न० १३।३२ में इसे 'कन्धकालीमुदग्रां ग्राहीरूपां' अर्थात् 'मकरीरूपधारिणी कन्धकाली' कहा है। यह हनुमान्‌जीको निगलने लगी, यह देख उन्होंने अपने हाथोंसे उसका मुख फाड़ डाला, जिससे वह मर गई,— 'दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह। अ०रा० ६।७।२३।" वह शापमुक्त होगई। उसीका रूपक यहाँ है। वहाँ तालावमें मकरी, यहाँ बाहुमें पीड़ा। वहाँ मकरीका मुँह फाड़कर उसे मार डाला, वैसेही यहाँ पीड़ाको सर्वथा नष्ट कर दीजिये।

२३—घनाक्षरी

राम को सनेह राम, साहस लखन, सिय[1]
राम की भगति सोच संकट निवारिये।
मुद-मरकट रोग-वारिनिधि हेरि हारे,
जीव जामवंत को भरोसो तेरो भारिये॥
कूदिये कृपाल तुलसी सुप्रेम पब्बय[2] ते,
सुथल सुबेल भाल[3] बैठिकै बिचारिये।
महावीर बाँकुरे बराकी बाहु[4] परि क्यौं[5] न,

१ सीय--ज०। २ पब्वइते--छ०, च०, प० [ते]। पब्बय ते--ह०, मु०, श०, [लं०-व०]। ३ भालु--व०। ४ बांहु--ह०, मु०। बाँह--व०। बाहु--छ०,च०, श०,पं०। ५--क्यौ--ह०,मु०।

लंकिनी ज्यों[६] लात घात ही मरोरि मारिये ॥२३

शब्दार्थ—साहस = किसी भारी कार्यके सम्पन्न करनेमें दृढ़तापूर्वक कठिनाइयोंका सामना करनेकी शक्ति। मुद = मानसिक आनन्द। मरकट (मर्कट) = वानर। हेरि = देखकर। हारना = हिम्मतका छूट जाना, साहस न रह जाना। पब्बय = पर्वत। सुथल = सुन्दर उत्तम स्थान। सुबेल = त्रिकूटाचल जहाँ सेना सहित श्रीरामचन्द्रजी उतरे थे। भाल = मस्तक; भाग्य-स्थान (ह०)। बाँकुरे = बाँके, कुशल, चतुर। साहसी। बराकी = तुच्छ। लात = पैर। घात = प्रहार, चोट। मरोरि मारना = क्रोधकर नष्ट करना। 'मरोड़' = 'क्रोध' (श० सा०)।

पद्यार्थ—(मेरे) रामानुरागरूपी श्रीराम, (परमार्थ साधनका) साहसरूपी श्रीलक्ष्मणजी और रामभक्तिरूपिणी श्रीसीताजीके शोच और संकटको दूर कीजिये। आनन्दरूपी वानर रोगरूपी समुद्रको देखकर (हिम्मत) हार गये हैं। जीवरूपी जामवंतको आपका भारी भरोसा है। हे कृपालु! आप (मुझ) तुलसीदासके सुन्दर प्रेमरूपी पर्वतपरसे कूदिये। मेरे मस्तकरूपी सुन्दर स्थल सुबेलपर बैठकर विचार कीजिये। हे बाँके महान् वीर! आप मेरी तुच्छ बाहुपीड़ाको लंकिनीकी भाँति लातके प्रहारसे ही क्यों नहीं मरोड़कर (क्रोध करके) मार डालते।२३।

टिप्पणी—१ श्रीसीताहरणरूपी विपत्तिसे श्रीराम-लक्ष्मण-सीता तीनों शोकयुक्त थे। श्रीरामजीके दुःखसे श्रीलक्ष्मणजी भी दुखी थे—(श्रीहनुमानजीने इनका शोकसंतप्त होना श्रीसीताजी-

६ ज्यौं--ह०,मु०। क्यों, ज्यों--औरों में। *तुकांत मे--यै [ह० में], ए [छ०, च० में], ये--औरोंमें।

से कहा भी है। यथा 'कृतवाञ्छोकसंतप्तः शिरसा ते ऽभिवादनम्। वा० ५।३४।४।')—फिर भी वे बड़े साहसी थे, श्रीरामजीको अनेक प्रकारसे सान्त्वना देते थे समझाते रहे कि बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ विपत्तिमें विचलित नहीं होते, आप धैर्य धारणकर मेरे साथ पता लगानेका प्रयत्न करें। इत्यादि। (वा० ४।६१। १४-१६,३०;६३।१६;६४।२१-२२; पूरा सर्ग ६५,६६ देखिये)। दक्षिण दिशामें खोजके लिये भेजे-गये वानरोंको पता लगनेपर कि सौ योजन समुद्र पार लंका है. 'तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोचरत अहई', यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि "समुद्र लाँघनेमें किसकी कितनी शक्ति है। कौन सौ योजन समुद्र लाँघकर पुनः इस पार लौट आनेकी शक्ति रखता है?" तब 'निज-निजबल सब काहू भाषा। पार जाइ कर संसय राखा। ४।२९।६।', 'अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जिय ससय कछु फिरती वारा। ४।३०।२ ।'—इस प्रकार सभी हार मान गये। अंगद निराश होकर बोले कि यदि कोई पार नहीं जा सकता तो हम सबोंको यहाँ प्राण दे-देना होगा, क्योंकि विना सीतादर्शनरूपी कार्य किये लौटनेसे सुग्रीव हमारा वध करेगा।—उस समय जाम्बवान्ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि 'मैं ऐसे वीरको प्रेरित कर रहा हूँ जो इस कार्यको सिद्ध करेगा;—'एष संचोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति। वा० ४।६५।३४।' यह कहकर उन्होंने श्रीहनुमान्जीको उनके बल आदिका स्मरण कराया और समुद्रको लाँघकर वानरोंकी चिन्ता दूर करनेकी प्रेरणा दी।—यही 'जामवंतको भरोसो तेरो भारिये' से यहाँ जनाया गया।

श्रीहनुमान्जी महेन्द्रपर्वतपरसे कूदे थे और लम्बपर्वतके विचित्र लघु शिखरोंवाले महान् समृद्धशाली शृङ्गपर उतरे थे—

'ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे विचित्रकूटे निपपात कूटे। वा० ५।१।२११।'—इसीको यहाँ 'सुथल सुबेल' कहा है। इसीपर बैठकर श्रीहनुमान्‌जी आगेके अपने कर्तव्य कार्यके सम्बंधमें दो घड़ी तक विचार करते रहे। (वा० ५।२।३२)। ये विचार श्लो० ३२ से ४८ तकमें हैं। तत्पश्चात रात्रिमें सूक्ष्म रूपसे लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए लंकिनीने उन्हें देखकर रोका। हनुमान्‌जीके बायें हाथकी मुट्ठीके लघु प्रहारसे ही वह 'रुधिर बमत धरनी ढनमनी।··· जोरि पानि कर बिनय बहूता।५।४।' अतः उसे स्त्री जानकर उनपर दया आगई, उन्होंने उसे मारा नहीं।

टिप्पणी—२ इसी उपर्युक्त कथाका यहाँ रूपक है। वहाँ श्रीराम, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजी शोच-संकटमें। यहाँ 'मेरा स्नेह जो श्रीराममें है', 'परमार्थसाधनमें कठिनाइयोंको सहते हुए उद्योगमें प्रयत्नशीलता'-रूपी मेरा साहस और 'मेरी श्रीराममें भक्ति' बाहुपीड़ाके कारण संकटमें हैं. कोई निबह नहीं पाते, यह सोच है। वहाँ समुद्रको देख पार जानेमें वानरोंको संशय और यहाँ बाहुपीड़ा रोगको देख उससे पार होनेमें मेरा आनंद हार मान रहा है। (आगे पद ३६ में कहा भी है—'बाँह की बेदन बाँहपगार पुकारत आरत आनंद भूलो।'—वही भाव यहाँ है। 'बारि निधि हेरि हारे' से जनाया कि रोमाञ्चकारी महासागरको देखकर ही उनका साहस जाता रहा, समस्त श्रेष्ठ वानर बड़े विषादमें पड़ गये थे। दुर्लङ्घ्य समुद्रपर दृष्टिपात करके वे सब 'अब कैसे करना चाहिये' ऐसा कहते हुये एक साथ चिंता करने लगे थे। यथा—रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः।', 'विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन॥ विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात्। (वा० ४।६४। ६-८)।—ये सब भाव भी 'हेरि हारे' में हैं। वहाँ वानरी सेना

सोचमें पड़ गई थी. यहाँ इस रोगसे मैं चिन्तित हूँ—(यह पद १७ के 'संकट सोच सबै तुलसी लिये नाम फटै मकरी-के-से जाले। बूढ़ भये बलि मेरिही बार' से स्पष्ट है)। वहाँ जाम्बवान्‌को कार्यसिद्धिके विषयमें श्रीहनुमान्‌जीपर पूर्ण विश्वास और भरोसा था, अतः उन्होंने उनको उनके बलका स्मरण कराया। उनकी प्रेरणासे हनुमान्‌जी समुद्रको लाँघ गये। यहाँ 'जीव' अर्थात् मेरी आत्माको आपका भरोसा है, अतः आपके बलका स्मरण (पद १ से यहाँ तक) कराके आपको प्रेरित कर रहा हूँ।—(रावरो भरोसो तुलसी के रावरोई बल', 'केसरीकुमार बल आपनो सँभारिये' पद २१, २२)।

जाम्बवान्‌ने वहाँ कहा था कि हम सबोंका जीवन तुम्हारे अधीन है,—'त्वद्‌गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम्। वा० ४।६७।३५।' श्रीहनुमान्‌जीने समुद्र लाँघकर वानरोंपर कृपा की। यहाँ 'कृपाल' संबोधनसे जनाया कि मेरा जीवन भी आपके अधीन है, मुझपर कृपा कीजिये। वहाँ महेन्द्रपर्वत, यहाँ मेरा सुन्दर प्रेम। वहाँ सुवेल (लम्बका शिखर), यहाँ भाल। सुवेल विचित्र शिखरों और समृद्धिसे शोभित, वैसेही भाल सौभाग्यके विविध अंकोंसे युक्त। वहाँ समुद्रोल्लङ्घनके लिए महेन्द्रपर्वतका सहारा लिया, यहाँ रोगसिंधुके पार करनेमें मेरे 'सुप्रेम' का सहारा लीजिये। (आगे पद ३४ में कहा है—'बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि'; वही प्रेम यहां इंगित है)।

'भाल बैठि कै बिचारिये'—सुवेलपर बैठकर श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदयके लिये श्रीसीताजाका दर्शन प्राप्त करने आदिके उपायपर विचार किया था। (वा० ५।२।३२)। वैसेही यहाँ मेरे भाग्य-स्थान भालपर बैठकर 'रामस्नेह' के अभ्युदयके

लिए रामभक्तिके शोच-संकटको मिटानेके संबन्धमें विचार कीजिये। वहां अपने कर्तव्यकी ओर अग्रसर होते ही लंकिनी आकर बाधक हुई, वैसेही यहां बाहुपीड़ा मेरी रामभक्तिमें बाधक है, उसके मिटनेपर ही रामभक्तिवाला संकट दूर होगा और रामस्नेहका अभ्युदय होगा। अतः बाहुपीरको लंकिनीकी उपमा दी।

३ 'लात घात ही मरोरि मारिये'—लंकिनी तो लंकाकी अधिष्ठातृ देवी थी, क्रूरस्वभाव और विकट मुखवाली थी। और बाहुपीर तो तुच्छ है, इसके लिये मुट्ठीके प्रहारकी आवश्यकता नहीं, लात मारनेसे ही काम चल जायगा। लंकिनीको जीवित छोड़ दिया था, परन्तु बाहुपीरको तो नष्ट ही कर डालिये।

२४—घनाक्षरी

लोक परलोकहूँ तिलोक न बिलोकियत,
तो सों समरत्थ चष चारिहूँ निहारिये* ।
कर्म काल लोकपाल अग-जग जीवजाल,
नाथ हाथ सब निज महिमा बिचारिये ॥
खास दास रावरो निवास तेरो तासु उर,
तुलसी सो देव दुखी देखियत भारिये।
बाहुतरुमूल बाहुसूल कपिकच्छु[1]-बेलि,
उपजी सकेलि कपि खेल[2] ही उखारिये ॥२४

*[सर्वत्र तुकान्तमें] यै--[ह०]। ए--[च०, छ०]। ये--ज०, व०, श०। १ कछू--ह०। कच्छु--पं०। २ खेल--ह०, छ०, च०, ज०, पं०। केलि--व०, श०।

शब्दार्थ—विलोकियत = देख पड़ता, दिखाई देता। समरथ (समर्थ) = कार्य करनेकी योग्यता रखनेवाला। = शक्तिमान। चष = चक्षु; नेत्र। चारि चष—दो बाहरके और दो भीतरके। ज्ञान और वैराग्य भीतरके नेत्र हैं—('ज्ञान बिराग नयन उरगारी। ७।१२०')। बैजनाथजी लिखते हैं कि "देहके दोनों नेत्रोंकी दृष्टि सूर्य अथवा अग्निके प्रकाशसे प्रकाशित होती है और भीतर हृदयमें चित्त और बुद्धि दो नेत्र हैं, जिनमें विचाररूपी दृष्टि है, जो ज्ञान अथवा वैराग्यके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। बाह्यसे लोकव्यवहार मात्र दीखेंगे और भीतरके नेत्रोंसे लोक और परलोक दोनोंके व्यवहार देख पड़ेंगे। अग-जग = स्थावर जंगम; चर अचर। जाल = समूह। महिमा = महत्व, गौरव, प्रताप। खास = निजका; अनन्य। तरु मूल = वृक्षकी जड़। शूल = पीड़ा। कपिकच्छुबेलि = केवाँचकी लता, वानरी। यह बेल सेमके बेलके आकारकी होती है। यह भूरी काली और सफेद तीन प्रकारकी होती है। काली और सफेद तरकारीके काम आती है। वंदरको बहुत प्रिय होती है। (तु० ग्रं०)। भूरी केवाँचके चमकदार रोयोंके शरीरमे लगनेसे खुजली और सूजन होती है। सकेलि = बटोरकर।

पदार्थ—चारों ही नेत्रोंसे देखनेपर लोक और परलोक भा बना देनेवाला (अर्थात् लौकिक-पारलौकिक दोनों सुख प्राप्त कर देनेवाला) आप-सा समर्थ तीनो लोकोंमें (कोई) देखनेमें नहीं आता। हे नाथ! कर्म, काल, लोकपाल, स्थावर और जंगम (चराचर) सारा जीव समूह आपके अधीन है,— अपनी इस महिमाका विचारिये। तुलसी आपका खास दास है, उसके हृदयमे आपका निवास है वही (तुलसी) हे देव! भारी दुखी दीख रहा है। मेरे बाहुरूपी वृक्षकी जड़मे बाहुपीड़ारूपी

केवाँचकी लता उत्पन्न हुई है। उसे बटोरकर वानर-केलिसे (वानर-स्वभाव सरीखा) ही उखाड़ डालिए।२४।

टिप्पणी—१ 'कर्म'—सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे शुभ, अशुभ और मिश्र तथा नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीनों प्रकारके कर्म। कर्मोकी संख्या नहीं। कर्म, काल, गुण और स्वभावका प्रभाव सभीपर पड़ता है—'काल करम गुन सुभाव सबके सीस तपत। बिनय १३०।' सात्त्विक राजस आदि जितने भी भाव हैं वे सब कालकी प्रेरणासे प्राणियोंको प्राप्त होते हैं। कालकी प्रेरणासे प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है। काल भगवान्‌का धनुष है और लव निमेष आदि उनके बाण हैं—'लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड। भजसि न मन तेहि राम को काल जासु कोदंड।' कर्म काल आदि सब हनुमान्‌जीके आज्ञाकारी हैं, यह आगे पद ३० मे कहा है; उसीको यहाँ 'नाथ हाथ सब' से जनाया है।

'निज महिमा बिचारिये' का भाव कि जिसके अधीन ये सब हैं, उसके खास दासका अनिष्ट हो यह आश्चर्य है। कर्मका दुष्परिणाम अथवा कालप्रेरित या किसी भूत-प्रेत-देवी-देवकृत यह बाहुपीड़ा हो, तो भी वह कब रह सकती है यदि आप टुक देख दें। 'खासदास…उर'—पद १४ (५), २१ (१ ख) देखिए।

२ 'बाहुतरुमूल बाहुसूल…' इति। (क) लता जड़से निकलकर वृक्षपर फैलती है। वैसेही पीड़ा बाहुकी जड़में उत्पन्न होकर फैलती जा रही है। (ख) 'कपि खेल ही उखारिये'—'कपिकच्छु' का एक नाम 'वानरी' भी है। यह वानरोंको बहुत प्रिय है। अतः वे उसे देखते ही उखाड़कर खा जाते हैं। साथ ही भूरी लताको भी उपजते देखकर उखाड़ फेंकते हैं कि काली और सफेदको लेते समय कहीं यह शरीरमे न लग जाय।

बंदर उसे स्वाभाविक खेल सरीखा उखाड़ते हैं। अतः बाहुशूल-को कपिकन्दुका रूपक देकर उसे कपिखेल सरीखा उखाड़नेकी प्रार्थना की।

२५—घनाक्षरी

करम कराल कंस भूमिपाल के भरोसे,
बकी बक-भगिनी काहू ते[1] कहा डरैगी।
बड़ी बिकराल बालघातिनी न जात कहि[2],
बाहु बल बालक छबीले छोटे छरैगी॥
आई है बनाइ बेष आपहू[3] बिचारि देख,
पाप जाय सब को गुनी के पाले परैगी॥
पूतना पिसाचिनी ज्यौं[4] कपि कान्ह तुलसी की,
बाहुपीर महाबीर तेरे मारे मरैगी॥२५

शब्दार्थ—भूमिपाल=राजा। बकी=बक (बकासुर) की बहिन जो स्तनोंमें विष लगाकर श्रीकृष्णजीको मारने गई थी।=पूतना। भगिनी=बहिन। बालघातिनी=बालकोंको मारनेवाली। छबीले=सुन्दर; छबिमान्। छरैगी=छलेगी, छल कर मारेगी। गुनी (गुणी)=कलाकुशल पुरुष; पूतनाकी बाधा नष्ट करनेमे निपुण। पाला=व्यवहार करनेका संयोग; संबंधका अवसर; साबिका। के पाले पड़ेगो=की पकड़मे

१ ते-ह०, श०। तें०--छ०, ज०, पं०, व०। २ कही--ह०। ३ आपहू ह०, ज०, पं० (हूँ)। आप ही--व०। आप तू- छ०, च०, श०। ४ ज्यौं--ह०, व०। ज्यों--औरोंमें।

आवेगी। = से काम पड़ेगा। पिशाचिनी = चुड़ैल, डाइन। पिशाच = हीन कोटिके राक्षस जो बहुत गंदे और अशुचि होते हैं। कान्ह = कन्हैया, बालक कृष्ण।

पद्यार्थ—घोर कर्मरूपी भयंकर राजा कंसके भरोसे बकासुरकी बहिन पूतना क्या किसीसे डरनेवाली है ? वह बड़ी भयंकर बालघातिनी है (उसकी करालता) कही नहीं जा सकती (अकथनीय) है। वह मेरे बाहुबलरूपी सुन्दर छोटे बालकको छल करके मारेगी। वह सुन्दर वेष बनाकर आई है, आप भी विचार देखें। गुणीसे काम पड़ेगा तो सबका पाप दूर होजायगा। हे वानररूप कन्हैया ! हे महावीर ! तुलसीदासकी पिशाचिनी पूतना जैसी बाहुपीड़ा आपके ही मारनेसे मरेगी। २५

टिप्पणी—१ पूतना बड़ी घोर बालघातिनी थी। कंसने इस पूतना बाल-ग्रह दानवीको नगर, ग्रामों और व्रजमें बालकोंको मारनेके लिए भेजा था। उसका बल पाकर वह बालकोंको मारती फिरती थी।—'कंसेन प्रहिता घोरा बालघातिनी। भा० १०।६।२।', 'पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना। श्लो० ३५।' (लोगोंके बालकोंको मारने और रक्त पान करनेवाली)। 'कंसेन प्रहिता' 'घोरा', बालघातिनी' क्रमशः यहाँके 'कंस भूमिपालके भरोसे', 'न जात कहि', 'बड़ी बालघातिनी' हैं। वह मायासे सुन्दर स्त्रीका रूप बनाये म्यानमें छिपी हुई तलवारके समान तीव्रस्वभाववाली दुष्टा बालकोंको खोजकर मारा करती थी।—यह छलना है। अभीतक वह किसी ऐसेके पाले न पड़ी थी, जो उसका मर्म जानता हो, सब उसे देवी ही समझते थे। जब वह श्रीकृष्णके पाले पड़ी, जो उसका मर्म जानते थे, (यथा 'विबुध्य तां बालकमारिका ग्रहं···। भा० १०।६।८।'), तब वह मारी गई। कथा इस प्रकार है:—वह गोकुलमें बड़ा सुन्दर वेष

बनाए हाथमें कमल लिये हुए आई, ऐसी जान पड़ती थी कि लक्ष्मी ही हैं; अतः रूपपर मोहित हो किसीने रोका नहीं। उसने बालक कृष्णको उठाकर गोदमें लेलिया और उनके मुखमें भयंकर एवं दुर्धर विषसे भरा हुआ अपना स्तन दे दिया। भगवान् कृष्णने उस स्तनको बलपूर्वक दबाकर उसे प्राणोंके साथ पान किया। वह हाथ-पैर पटक-पटककर चीख-चीखकर रोने लगी, स्तनोंकी पीड़ासे मर गई। उसके समस्त पाप नष्ट होगए।—'सपद्याहतपाप्मनः। श्लोक ३४।' अन्य बालकोंका मारा जाना बंद होगया।

२ इसीका रूपक इस पद्में है। घोर कर्म विकराल कंस है। पूर्वकृत कर्म छायाकी तरह जीवके साथ लगे रहते हैं, सबको अवश्य भोगना पड़ते हैं, बिना भोगे छूटते नहीं। यथा 'निज कृत कर्म भोग सब भ्राता। २।९१।८',—यही कर्मको करालता और बल है।—'करम कठिन गति'. 'कर्मणो गहना गतिः।') पूतना कंसप्रेरित, वैसेही बाहुपीड़ा कर्मप्रेरित है।—(यथा 'करम बिबस दुख सुख छति लाहू। २।२८३।३।')। पूतना बालकोंको मारती थी। बाहुपीड़ा बाहुबलरूपी बालकको मारने आई है। पूतना रक्त पान करनेवाली राक्षसी (पिशाचिनी) है और कंसप्रेरित है,— इस मर्मको श्रीकृष्णनेही जाना। उन गुणीके पाले पड़तेही उसका नाश हुआ। वैसेही यह पीड़ा बाहुका रक्त पीकर इसे सुखाकर बलहीन करनेको कर्मप्रेरित आई है, इस मर्मको श्रीहनुमान्‌जी जान सकते हैं और उसको नष्ट करनेको समर्थ है। अतः उनको बाल-कन्हैयासे रूपितकर, उनसे उसे नष्ट करनेकी प्रार्थना करते हैं। मेरी बाहुपीड़ा दूर होनेसे इसका पापभी न रहेगा वैसेही इस बाहुक द्वारा औरोंके भी पाप नष्ट होंगे।[ह०—'पाप जाय सबको' अर्थात् सब अंगोंका दुःख दूर हो

जायगा'।]☞ यह एक प्रकारसे आशीर्वाद और फलश्रुति इस ग्रंथकी है।

२६—घनाक्षरी

भालकी कि कालकी कि रोषकी त्रिदोषकी है,
वेदन विषम पाप ताप छल छाँह की।
करमन कूट की कि जंत्र मंत्र बूट की,
पराहि जाहि पापिनी मलीन मन माह की॥
पैहहि[1] सजाय नत कहत बजाय तोहि,
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की।
आन हनुमान की दोहाई बलवान की,
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाँह की॥२६

शब्दार्थ—भाल की = ललाट वा मस्तककी लिखावट, अर्थात् कुभाग्यसे उत्पन्न। काल = कुसमय। रोष की = किसीके शाप या क्रोधसे। त्रिदोष की = वात-पित-कफ जनित सन्निपात रोगसे उत्पन्न। बेदन (वेदना) = पीड़ा; व्यथा। छल-छाँह की = भूत-प्रेतादिका प्रभाव; आसेब बाधा। करमन (कार्मण) = मूल कर्म जिनमें मंत्र और औषध आदिसे मारण, मोहन, उच्चाटन आदि किया जाता है, यथा—'जयति पर जंत्र मंत्राभिचारग्रसन कार्मन कूट कृत्यादि हंता।' कूट = गुप्त प्रयोग। वालू या राखसे बनाया हुआ गोल रेखा यन्त्र या तन्त्रप्रयोग। —(विनय पीयूष पद २६)। जंत्र = यंत्र। = तांत्रिकोंके अनुसार कुछ बने हुये कोष्ठक आदि जिनमे कुछ अंक या अक्षर आदि

[1] पायहै--ह०, ज०, मु०।

लिखे रहते हैं। मंत्र=तंत्रके अनुसार वे शब्द या वाक्य जिनका जप भिन्न-भिन्न कामनाओंकी सिद्धिके लिये करनेका विधान है। जंत्र-मंत्र=जादू-टोना। बूट=औषधि; जड़ी-बूटी। पराहि जाहि=भाग जा। मलीन=मैले; हिंसा वासना-वाली। पैहहि=पायेगी। सजाय (सजा)=दंड। नत=नहीं तो। बजाय=डंकेकी चोटपर; डंका पीटकर; खुल्लमखुल्ला। बावरी=पागल; बावली। बानि=टेव; स्वभाव। नाह=नाथ; स्वामी। आन=सौगंद। दोहाई=सहायता या रक्षाके लिये पुकार,—यह भी एक प्रकारका शपथ है।

पदार्थ—अरी बाहुकी भयंकर पीड़ा! (तू) ललाटकी लिपि (अर्थात् प्रारब्धजनित कुभाग्यसे) है, या कालकृत (बुरे दिनोंके फेरफारसे) है, या किसीके कोपसे है, या वात-पित्त-कफकृत है, या विषम पापोंके परिणामरूप संताप (एवं पाप या त्रितापसे) है, अथवा किसी भूत-प्रेत-आदिके प्रभावसे है या कार्मण या कूट नामक मंत्र-तंत्र-प्रयोगकृत है, अथवा अन्य यंत्र-मंत्र (टोटका आदि) या जड़ी-बूटीकृत है। (जो भी हो) अरी मलिन मनमें रहनेवाली पापिन! भाग जा! नहीं तो तू सजा पावेगी। मैं डंका पीटकर तुझसे कहे देता हूँ। कपि-राज श्रीहनुमानजीकी टेव जानकर तू पगली न बन। अरी बाहुपीड़ा! तुझे हनुमान्जीकी सौगन्द है, उन बलवानकी दुहाई है और उन महान् वीरकी शपथ है जो तू रह जाय।२६।

टिप्पणी—१ (क) पद १६ में पाप, शाप और ताप पद २४ मे कर्म,काल और चराचर जीव, तथा पद २५मे कराल कर्मकी चर्चा कर चुके हैं। वेही सब प्रथमचरणमे एकत्र कहे है। दूसरे चरणमें मलिन मनवाले शत्रुओंके प्रयोग कहे। (ख)—'मलीन मन माँह की'—भूत-प्रेत-पिशाच-आदि कृत तथा कार्मण

कूट आदि प्रयोग महान् मैले मन वाले लोग ही करते हैं। यह दुःख देनेवाली पीड़ा पहुँचानेकी इच्छा मलिन हृदयवालोंमें ही होती है, अतः 'मलीन मन माँह की।' कहा। 'बानि जानि कपि-नाह की' अर्थात् इनका स्वभाव है कि ये स्त्रीको भी नहीं छोड़ते, इन्होंने सिंहिका, मकरी और लंकिनी तीनों दुष्ट स्त्रियोंको दंड दिया है। 'पीर' भी स्त्रीलिंग है। अतः यह स्वभाव सुनाकर उसे भय देते हैं।

२—'आन हनुमान की···' इति। हनुमान्‌जीकी शपथ सुनकर यन्त्र-मन्त्र-कूट आदि भाग जाते हैं,—'घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुजोग रोग हनुमान आन सुनि छाँड़त निकेत हैं।३२।' विनयमें भी श्रीहनुमान्‌जीका यह प्रभाव कहा है—'जयति पर-जंत्र-मंत्राभिचारग्रसन कार्मन कूट कृत्यादि हंता। साकिनी डाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता। वि० २६।'—अतः शपथ दिला रहे हैं कि भाग जा।

२७—घनाक्षरी

सिंहिका सँघारि[1] बलि सुरसा सुधारि छल,
लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है।
लंक[2] परजारि मकरी बिदारि बार-बार,
जातुधान धारि धूरिधानी करि डारी है॥
तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी,
रावन की रानी मेघनाद महतारी है॥

१ सँघारि--ह०, ज०, श०। सँहारि--छ०, ज०, पं०, व०। २ लंक परजारि--ह०, व०, श०। लंका परजारि--छ०, च०। लंकपुर जारि--वै०, ज०।"

भीर बाँहपीर की निपट राखी महाबीर,
कौनके सकोच[२] तुलसी के सोच भारी है ॥२७

शब्दार्थ—सँघारि (संहारि)=मारकर। सुरसा=सर्पोंकी माता। सुधारना=संशोधन करना; दोषको दूर करना; संस्कार करना। पछारि मारना=पराक्रमसे परास्तकर गिरा देना; गिराकर सारे अंगोंको शिथिल कर देना। परजारि=भली भाँति जलाकर। धारि=सेना। धूरिधानी=ध्वंस, विनाश, मर्दगद। जमकातरि=यमका छूरा या खाँड़ा। यह एक पटेका ठाट है जिसे 'गोहारिका ठाट' भी कहते हैं; उस ठाटको किये हुए रावणके अन्तःपुरके द्वारपर अनेक वीर खड़े रहते थे। (ह०)। और, वैद्यनाथ देशमें 'किंवाड़ों' को 'यमकातरि' कहते हैं। (ह०)। कढ़ोरना=घसीटना। आनी=लाये। भीर=संकट; कष्ट। निपट=नितान्त; एकदम; बहुत अधिक (काल तक)। सकोच=दबाव; हिचकिचाहट; भय; लिहाज़।

पद्यार्थ—मैं बलिहारी जाता हूँ। आपने सिंहिकाको मारकर, सुरसाके छलको सुधारकर और लंकिनीको परास्तकर अशोकवाटिकाको उजाड़ डाला। लंकापुरीको भली भाँति जलाकर, मकरीको विदीर्णकर (मुँह फाड़कर उसका वध करके), राक्षसोंकी सेनाको बारंबार मर्द-गर्द कर डाला। 'यमकातरि' को तोड़कर मन्दोदरीको, जो रावणकी रानी और मेघनादकी माँ थी, बाहर घसीट लाये। (परन्तु ऐसे-ऐसे वीरताके काम करनेवाले) हे महावीर! (न जाने) किसके संकोचसे मेरे बाहुपीरकी विपत्तिको आपने नितान्त रख छोड़ा है—तुलसीदासको (यह बड़ा) भारी सोच है।२७।

---

२ सकोच--ह०,व०। सँकोच--छ०, च०, ज०, पं०, श०।

टिप्पणी—१ 'सुरसा सुधारि छल'—वास्तविक रूपको छिपानेका कार्य 'छल' है। श्रीहनुमान्‌जीके बलाबलकी परीक्षार्थ नागमाता सुरसाको देवताओंने विकराल दाढ़ों, पीले नेत्र और आकाशको स्पर्श करनेवाले विकट मुखवाला राक्षसीका रूप धारण करके मार्गमें विघ्न डालनेकी प्रेरणा की। अतएव वैसा रूप बनाकर उनके सामने खड़ी होकर उसने कहा—'देवेश्वरने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर मुझे अर्पित किया है। ब्रह्माने मुझे वर दिया है कि कोई भी मुझे लाँघकर आगे जा नहीं सकता। अतएव आज मेरे मुखमें प्रवेश करके ही आगे जाना चाहिये।' —'निविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम।' (ब्रह्माका वर है और देवताओंकी प्रेरणासे आई हुईहै, अतः उसका मान किया गया) उन्होंने कहा कि अच्छा 'तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सह सको'- -'कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसि।' (वा० ५।१।१४५-१५१, १५८. १६०)।··· जब उसने शत योजन विस्तारका मुख कर लिया, तब अँगूठेके बराबर छोटे होकर उसके मुँहमें प्रवेश करके हनुमान्‌जी निकल आये और बोले दक्षकुमारी! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुँहमें प्रवेश कर चुका। लो, तुम्हारा वर भी सत्य होगया। तुम्हारी बात भी रह गई। मुझे जानेकी आज्ञा हो। मुखसे निकले हुए-को कोई फिर नही खाता।—उसके 'छल' को सुन्दर रीतिसे निबाह दिया, छलसे बनाई हुई वरकी बातको सत्य मानकर उसकी प्रतिष्ठा रखनेसे 'छल' का संस्कार हो गया, उसका दोष जाता रहा।—यही 'छल' का सुधारना है।

२—'लंकिनी पछारि मारि' में वा० ५।३।४१ ४५ के 'तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी पपात सहसा भूमौ', 'निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण' (अर्थात् 'प्रहारसे उसके सारे अंग'

व्याकुल होगये, वह पृथ्वीपर गिर पड़ी। 'हे वीर ! आपने अपने पराक्रमसे मुझे परास्त कर दिया')—इन उद्धरणोंका भाव है।

३—'बार बार धूरिधानी…'—किंकर, जम्बुमाली, मंत्रीके सात पुत्र, अक्षकुमार और मेघनाद क्रमशः अपनी-अपनी सेना सहित अशोकवनमे आये थे,—जब-जब जो आये मारे गये। फिर लंकाकांडमे भी बार-बार इन्होंने निशाचरोंका नाश किया है।

४—'तोरि जमकातरि… ' इति। (क)—यह प्रसंग अध्यात्म रा० ६।१०।११,१७,१६–२४ से मिलता-जुलता है। रावण अपने महलमें पातालके समान गंभीर गुहा निर्माण कराके उसीमें बैठकर होम कर रहा था। रानियाँ अन्तःपुरमे थी। लंकाके सब द्वारोंके फाटक आदि बंद करा दिये गये थे। महलपर बहुतसे द्वारपाल थे। गुहाका मुख बहुत बड़ा पाषाण रखकर बंद कर दिया गया था। वानरोंने जाकर द्वारपालोंको मार डाला, पाषाणको चूर-चूरकर गुहामें घुसकर यज्ञ-सामग्रीको कुंडमे डाल दिया। रावणको पीटा, फिर भी वह न उठा, तब अन्तः पुर (रनवास) में जाकर मन्दोदरीको चोटी पकड़कर गुहामें घसीट लाये। (ख) 'रावनकी रानी…' अर्थात् लोकको रुलानेवाले ऐसे प्रतापी शूरवीरकी पटरानी और मेघनाद जैसा वीर जिसके गर्भसे उत्पन्न हुआ था, उस वीर माताकी यह दुर्दशा की। मंदोदरीने रावणको धिक्कारते हुये—'हा मेघनाद ! आज तेरी माता वानरोंके हाथोंमें पड़कर क्लेश पा रही है। बेटा ! तेरे जीते रहनेपर मुझे यह दुःख क्यों देखना पड़ता ?' (अ० रा० ६।१०।३१–३२)—यह विलाप किया है। अर्थात् तू मेरी दुर्दशा देख रहा है, मेघनाद कदापि न सह सकता। 'कढ़ोरि आनी' से जनाया कि अन्तः पुरसे यज्ञशालातक चोटी पकड़कर घसीटते

लाये।—'मंदोदरी-केसकर्षन विद्यमान दसकंठ भटमुकुट मानो।' (वि० २६ । यहाँ 'तोरि जमकातरि' से रनवासके कपाटोंका तोड़ना पाया जाता है। [वीरकविने 'यमराजका खड्ग अर्थात् परदा फाड़कर' अर्थ किया है। अन्तः पुरके द्वारपर गोहारिका ठाटको किये हुए वीर योद्धा खड़े रहते थे-इसका प्रमाण किसी-ने नहीं दिया है।]

५ 'कौनके सकोच' में भाव यह है कि बाहुपीड़ाहरणमें आपका संकोच अकारण ही है।

२८—घनाक्षरी

तेरी बालकेलि वीर सुनि सहमत धीर,
भूलत सरीर सुधि सक्र रबि राहु की ॥
तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,
तेरो नाम लेत रहै आरति न काहु की ॥
साम दाम[1] भेद बिधि बेदहूँ[2] लबेद सिधि[3],
हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की।
आलस अनख परिहास की सिखावन है,
एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की ॥२८*

शब्दार्थ—सहमना = डरकर हक्काबक्का-सा या गुमसुम रह जाना। धीर = धैर्यवान्। शक्र = इंद्र। भूलना = खो जाना;

१ दाम--ह०, ज०, च०, श०। दान--छ०, पं०, व०। २ बेदहु--छ०, च०, पं०। ३ सिद्धि--छ०, च०, पं०। * पं० रामगुलाम द्विवेदीकी पुस्तकमें यह पद नहीं है। कोई कोई इसे क्षेपक मानते है।

विस्मृत होना। भूलत सुधि = सुध भूल जाती है, अर्थात् अचेत हो जाते हैं; होश-हवास ठिकाने नहीं रहते। सुधि = चेतना, होश। राहु — एक दैत्य जो सिंहिकाका पुत्र था। समुद्रमंथनसे अमृत निकलनेपर देवताओंके साथ चोरीसे बैठकर इसने भी अमृत पान कर लिया था। रवि और सोमने भगवानको इशारे-से यह बात बतादी, तब भगवान्‌ने चक्रसे इसका सिर काट डाला। अमृ॰ पानसे वह अमर हो गया था। वह सिर 'राहु' नामसे प्रसिद्ध हुआ। नवग्रहोंमें वह भी एक है। यह सूर्य और चन्द्रको समय-समयपर ग्रसता है। बाँह = भरोसा; सहारा। साम, दाम और भेद—राजनीतिके चार अंगोंमेसे ये तीन अंग हैं। वैरी-को मीठी बातों द्वारा प्रसन्न करके अपनी ओर मिला लेना 'साम' है। 'शत्रुको धनद्वारा अपने वशमें कर लेना 'राजनीतिकी इस चालका नाम 'दाम' वा 'दान' है। शत्रुपक्षके लोगोंको बहका-कर अपनी ओर मिला लेना या उनमे परस्पर द्वेष उत्पन्न करके शत्रुको वशमें करना 'भेद' नीति है। बिधि = विधान; प्रणाली; पद्धति;कार्य करनेकी रीति। लबेद = लोकाचार एवं दन्तकथा। सिधि (सिद्धि) = निर्णय; साबित या निश्चित होना। चोटी = शिखा। चोटी हाथमें होना = किसी प्रकारके दबावमें होना। साहु = साहूकार, सज्जन, धनी, महाजन। आलस (आलस्य) = कार्य करनेमें अनुत्साह; सुस्ती; ढील। अनख = झुँझलाहट; रिस; क्रोध। परिहास = हँसी-दिल्लगी; क्रीड़ा; खेल-तमाशा। सिखावन = शिक्षा; उपदेश। रहना = ठहरना; न जाना; रुकना।

पदार्थ—हे वीर ! आपकी बालकेलिको सुनकर धैर्यवान् पुरुष सहम जाते हैं और इन्द्र, राहु तथा सूर्यकी (तो) शरीर-सुध गुम होजाती है। समस्त लोकपाल आपके (ही) भरोसे (अपने-अपने लोकोंमे) शोकरहित होकर बस रहे हैं। आपका

नाम लेनेसे किसीकी भी पीड़ा नहीं रह जाती। लोक और वेद-का भी निर्णय है कि साम-दाम-भेदका विधान तथा चोर और साहु† (दोनो) की चोटी कपिनाथ श्रीहनुमान्‌जीके ही हाथमें है‡। 'तुलसीके बाहुकी पीड़ा इतने दिन ठहर गई'—यह आपका। आलस्य है, क्रोध है, परिहास है या सिखावन है ? (क्या है ? किस कारणसे है ?) ।२८।

टिप्पणी—१ 'तेरी बालकेलि सुनि···' इति।(क) एक दिन अंजनी माता शिशु हनुमान्‌जीको आश्रममें छोड़कर फल लेने गई थीं। माताके विछोह तथा भूखसे व्याकुल हो ये रोने लगे। इतनेहीमें लाल रंगवाले उदयकालीन सूर्यको देख उन्हें लाल फल समझकर ये उसे लेनेको लपके। (इन्हें सूर्यकी ओर जाते देख पवनदेव इनको दाहसे बचानेके लिये वर्फके समान शीतल होकर इनके पीछे-पीछे चलने लगे)। (ख) शैशवावस्थामें इस प्रकार सूर्यकी ओर वेगसे जाते हुए देखकर देवताओं, दानवों

---

† चोर = वेदविमुख। साहु = वेद धर्मपर चलनेवाले। [रा०]

‡ अर्थान्तर—१ 'साम, दाम भेद तीनों विधियाँ सब कपिनाथके हाथ-में हैं ऐसा वेदमें लिखा है और लोकमे भी सिद्धि है कि चोरकी चोटी साहुके हाथ है।' [ह०] २--साम, दान और भेद-नीतिका विधान तथा वेद-लबेदसे भी सिद्ध है कि चोर-साहुकी चोटी कपिनाथके ही हाथमें रहती है। [व०]। ३ साम, दाम, दण्ड, विभेद और वेदों [धर्म] की विधिकी सफलता कपिकी दयापर ही निर्भर है और दुष्ट तथा सज्जन दोनों ही उनके वशमे हैं। [सु०]। ☞ वै०, न० सु० ने 'लबेद' का अर्थ दण्ड किया है। ४--साम, दाम, भेदकी विधियाँ, हे कपिनाथ ! आपके ही हाथमें है, यह वेदोंसे सिद्ध है और लोकमें ऐसी कहावत है -'चोर की चोटी साहुके हाथ'। [श०]।

और यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ ।—'विस्मयः सुमहानभूत । वा० ७।३५।२६।' वे सोचने लगे कि 'ऐसा वेग न तो वायुमें है, न गरुड़में और न मनसें ही है। जब बाल्यावस्थामें ही ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनका बल पाकर इसका वेग कैसा होगा।'—'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'। (ग)—एक छलाँगही में ये सूर्यके रथके ऊपरी भागमें पहुँच गये। उसी दिन सूर्यग्रहण होनेको था राहु सूर्यको ग्रस्त करनेकी इच्छासे ठीक उसी समय वहाँतक पहुँचा था। राहु भयभीत होकर भागा,—'अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो । वा० ७।३५।३२।', और जाकर इन्द्रसे बोला कि आज आपने किसी दूसरेको सूर्यको ग्रास करनेको कैसे भेज दिया? इन्द्र घबड़ाकर ऐरावतपर सवार हुए और राहुको आगेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ सूर्यसहित श्रीपवनपुत्र थे। राहुको सूर्यसे भी बड़ा फल समझकर ये सूर्यको छोड़कर उसे लेनेको लपके, तो वह डरसे चीखकर भागा और इन्द्रको पुकारने लगा,—'इन्द्र-इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत। श्लो० ४२।' इन्द्र आगे बढ़े। उनके ऐरावतको बड़ा विशाल फल समझकर ये उसे पकड़नेको दौड़े। उस समय उनका रूप इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशमान् एवं भयंकर हो गया था। इन्द्रने, 'अहमेनं निषूदये' (मैं इस आक्रमणकारीको मार डालूँगा, डरो मत।—ऐसा कहकर), वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोटसे इनकी 'हनु' (ठुड्ढी) टूट गई। (वा० ७।३५।२१-४७)।—और कुछ मूर्च्छा आई। वज्रके प्रहारसे न तो इनका कुछ बिगड़ा और न ये पीड़ित हुए—'वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च। वा० ४।६६।२८' (यह जाम्बवान्जीने हनुमान्जीसे कहा है)। शरीर स्वस्थ ही बना रहा। उनके अंगकी कान्ति तब भी सूर्य, अग्नि और स्वर्णके समान प्रकाशित हो रही थी।

(वा० ७।३५।६५)। (ब)—इन्द्रने वज्रका प्रहार मेरे पुत्रपर किया, यह देखकर पवनदेवने कुपित होकर तीनों लोकोंमें प्रवाहित होना छोड़ दिया। संपूर्ण भूतोंके प्राण-संचारका अवरोध होनेसे सभी व्याकुल हो ब्रह्माकी शरण गये। देवता, नाग, गंधर्व और गुह्यक आदि प्रजाओंको साथ लेकर ब्रह्माजी पवनदेवके यहाँ आये, जहाँ वे पुत्रको गोदमें लिए बैठे थे। ब्रह्माजीको देखकर पवनदेव उनके चरणोंपर गिर पड़े। उनको उठाकर ब्रह्माजीने उनके शिशुपर हाथ फेरा। हाथका स्पर्श पातेही शिशु मुर्च्छाविगत हो गया। तदनन्तर वायुदेवकी प्रसन्नताके लिए तथा भविष्यमें इस बालकके द्वारा देवताओंके बहुतसे कार्य होने हैं इस विचारसे ब्रह्माजीने सब देवताओंसे इनको वर दिलाया। इन्द्रने वज्रसे, वरुणने पाश और जलसे, शंकरजीने अपने तथा अपने आयुधोंसे, यमने दण्डसे, कुवेरने गदासे, विश्वकर्माने अपने बनाये हुये समस्त दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे और ब्रह्माजीने सब प्रकारके ब्रह्मदंडोंसे अवध्य होनेका वर दिया। और भी बहुतसे वर इनको मिले। (वा० ७।३६।६–२५)।

२ (क) 'सुनि सहमत धीर'—ऊपर (ख) में देव-दानवादिका देखकर विस्मित होना कहा, और जिन्होंने देखा नहीं उनका हाल यहाँ कहते हैं कि इस अद्भुत कार्यको सुनतेही धैर्यवानोंके भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। (ख)—शक्र, रवि और राहुकी दशा जो उस समय हुई वह १ (ग) में दिखाई गई। सूर्यको पकड़ ही लिया था। इन्द्र इनका भयंकर रूप देखकर ऐसा डर गये कि अपने प्राण बचानेके लिए उन्होंने सहसा वज्र चला दिया।—इन तीनोंको जब कोई वह बालकेलि सुना देता है, तो उसका स्मरण आते ही उनके होश-हवास जाते रहते हैं। —'जाको बाल बिनोद समुझि दिन डरत दिवाकर भोर को।…

लोकपाल अनुकूल विलोकिबो चहत विलोचन-कोर को। वि० ३१' विनयके 'दिन डरत' से जनाया है कि उनके हृदयमें गहरा भय समा गया है, अब तक वे डरते रहते हैं।

३ हाथ कपिनाथ ही के चोटी···'—वि० २५० में भी ऐसा ही प्रयोग हुआ है। यथा 'नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरू' मेरी समझमे 'चोर और साहु दोनोंकी चोटी हाथमें है'—यही अर्थ ठीक है।

४ 'एते दिन रही पीर'—भाव कि शक्र, रवि, राहु, सब धीर पुरुष, लोकपाल तथा सभी दुष्ट और सज्जन जिसके वशमें हैं, भला ऐसे समर्थका सेवक कष्ट झेला करे, यह कब उचित है ? फिर आपके नामका प्रभाव भी यह है कि नाम लेने मात्र-से दुःख नहीं रह जाता, मैं आपका नाम लेता हूँ, पुकार रहा हूँ, तब भी आप कष्ट दूर नहीं कर रहे हैं, क्या कारण है ?—यह कहकर अपनी ओरसे 'आलस', 'अनख', 'परिहास' और 'सिखावन' चारमेंसे ही किसी कारणका अनुमान बताया। 'आलस' है तो इसके सबंधमें आगे 'ढील तेरी बीर मोहि पीर ते पिराति है' कहा है। 'अनख' है तो कहते हैं—'केहि कारन खीझत हौ तो तिहारो।' (१६), तथा 'क्रोध कीजै कर्म को··· सोध कीजै तिन्हको जो दोष दुख देत हैं' (३२)। 'परिहास' के सम्बंधमें कहते हैं कि यह तो 'चिरी को मरन खेल बालकनि को सो है' [२६]। 'सिखावन' कारण हो तो प्रबोध कीजै तुलसी को···।' [३२], 'परेहू चूक मूकिये न···' [३४]।

२६—घनाक्षरी

टूकनि को घर-घर डोलत कँगाल बोलि,
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है।

कीन्ही है सँभार-सार अंजनीकुमार वीर,
आपनो बिसारिहैं[1] न मेरेहूँ भरोसो है ॥
एतनो[2] परेखो सब भाँति समरथ आजु,
कपिनाथ साँची कहौं[3] को त्रिलोक तोसो है ।
साँसति सहत दास कीजे पेखि परिहास,
चिरी[4] को मरन खेल बालकनि को सो है ॥ ५६

शब्दार्थ—टूकनि = रोटीके टुकड़ों । डोलत = फिरते हुए । कंगाल = भुक्खड़; दरिद्री । बोलि = बुलाकर । बाल = बालक । ज्यों = सदृश; के समान । नतपाल = शरणागतपालक । पोसो = पोषण किया; बड़ा और पुष्ट किया । सार-सँभार = पालन, पोषण और निरीक्षण (देखरेख) का भार । आपनो = आत्मीय; स्वजन । एतनो = इतना । परेखो = परीक्षा वा देर; विलंब । (ह०) । = पछतावा, खेद । (श० सा०, व०) । साँसति = दम घुटनेका-सा कष्ट । पेखि = देखकर । कीजै = कर रहे हैं । चिरी = चिड़िया ।

पद्यार्थ—हे कृपालो ! हे शरणागतपालक ! टुकड़ोंके लिए घर-घर (द्वार-द्वार) फिरते हुए (मुझ) कंगालको बुलाकर आपने बालकके समान पाला-पोसा है । हे अंजनी माताके वीर पुत्र ! आपने मेरा सार-सँभार किया है । (अपनाये हुये) अपने जनको आप न भुला देंगे—मुझको भी यह भरोसा है ।

---

१ बिसारिहै--ह०, श० । बिसारिहैं--छ०, च०, ज०, पं०, व०, मु० । २ इतनो--ह०, पं०, व०, श० । एतनो--छ०, च०, ज० । ३ कहो--ह०, च०, ज०, छ०, पं० । कहौं--व०, श० । ४ चिरी--ह०, च०, ज०, श०, मु० । चीरी--छ०, व०, पं० ।

आज सब प्रकारसे समर्थको इतना विलंब ?* हे कपिनाथ ! सच कहिये 'आपके समान त्रिलोकीमें कौन है ?' दास साँसति सह रहा है और आप देखकर हँसी-खेल कर रहे हैं। यह तो 'चिड़ियोंका मरण (और) बालकोंका खेल'-सा है ।२६।

टिप्पणी—१ 'टूकनि को ··कँगाल बोलि···पोसो' इति। श्रीहनुमान्‌जीको पूर्व 'वामदेवरूप', 'वामदेवको निवास' (पद २४;६) और साक्षात् वामदेव भी कहा है यथा—'भक्त-काम-दायक बामदेव' (वि० २८)। ऐसी ख्याति है कि जब घर-घर टुकड़े माँगते थे, वह भी लोग मारे डरके न देते थे कि जो कोई इस बालकका पालन करता है, वह मर जाता है; तब भगवान् शंकरने श्रीपार्वतीजीको प्रेरित किया। वे सुन्दरी स्त्री-का रूप धरकर इनको खिला-पिला जाती थी। एक बार किसीने देख लिया; दूसरोंमे भी बात फैली। लोग परिचय पानेके लिये ताकमें रहने लगे, तब इन्होंने आना छोड़ दिया। वामदेवजीने श्रीनरहर्यानन्दजीको प्रेरित किया कि बालकको लाकर दीक्षा दें और रामचरित पढ़ावें।—'कंगाल' 'बोलि' 'पालि पोसो' में इसी कृपाका संकेत है। तत्पश्चात् जब ये काशीमे आकर रहने लगे तब हनुमान्‌जीके इनको दर्शन हुए और उनकी कृपा इन-पर बराबर बनी रही। पद २१ के 'बालक बिलोकि बलि बारे ते आपनो कियो दीनबंधु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारिये'—में भी इसीका संकेत है। भाव कि मुझमें कोई करनी ऐसी न थी कि जिससे आप मुझे अपनाते, यह केवल आपकी 'कृपा' है।

*किन्तु मुझे इतना पछतावा है कि यह सेवक दुर्दशा सह रहा है ···' [व०]।

कहा भी है—'केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे। वि० ३३'

२ 'अंजनीकुमार वीर'—इसमें एक कथाका सकेत है। लंकासे लौटते समय मार्गमें हनुमान्‌जीने प्रभुसे माताके दर्शनको आज्ञा माँगी। प्रभुकी भी इच्छा दर्शनकी हुई। विमान कांचन गिरिकी ओर उड़ा। सबने दर्शन पाया। हनुमान्‌जी सबका परिचय देते गये। विभीषणको लंकेश कहकर परिचय देनेपर वे चौंक उठीं कि लकेश तो रावण है। तब हनुमान्‌जीने सीताहरणसे लेकर रावणवध तक सब वृत्तान्त सुनाया। सुनते ही वे आग-बगूला हो पुत्रको धिक्कारने लगीं-' अरे, मेरा दूध पीकर तूने मुझे आज कहीं मुख दिखाने योग्य नहीं रक्खा !··· अरे ! तुझसे यह न हुआ कि रावणको मसलकर फेंक देता लंकाको समुद्रमे फेंक देता। प्रभुने समुद्र बाँधा, संग्राम किया और तू साथ ही रहा।···। अरे कायर ! दूर हो, अब मुझे मुख न दिखाना।" हनुमान ी बोले माँ! मैं कायर नहीं हूँ। तुम्हारे आशीर्वादसे तुम्हारे दुग्धके प्रभावसे लंकाकी तो बात ही क्या, मैं ब्रह्माण्डको ही फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर सकता हूँ। पर मैं सेवक हूँ, स्वामीके संकेत और इच्छाके परतंत्र हूँ। मैंने आज्ञा माँगी थी कि रावणको मार डालूँ, त्रिकूटको ही उखाड़ लाऊँ, परन्तु जाम्ववान्‌ने मना कर दिया था।···।

श्रीलक्ष्मणजीकी चेष्टासे ताड़कर कि वे मेरी बातोंको अतिरंजित समझते हैं, उन्होंने उन्हींको संबोधितकर—'इधर देखो' कहते हुये सामनेके शिखरपर अपने हाथोंसे स्तनके दूधकी धार फेंकी। जैसे वज्र गिरा हो ऐसे भयंकर शब्दके साथ वह पर्वत फटकर दो टुकड़े होगया।—हिमालयके उस पर्वतको प्रतिवर्ष सहस्रों उत्तराखण्डके दर्शनार्थी देख आते हैं।

☞ जिस अंजना माताके दुग्धका यह प्रभाव है, उसके पुत्र ऐसे वीर हुआ ही चाहें।

३ 'आपनो बिसारिहैं न…'—एक बार जिसको अपना लिया उसको फिर त्यागते नहीं, यह बड़ोंकी रीति है, उन्हें अपने निवाज़ेकी लाज है। आपने मुझपर अपनी ओरसे कृपा की, पाला पोसा, शरणमें लिया। अतएव पूरा विश्वास है कि आप मुझसे अपराध होनेपर भी मेरा त्याग न करेंगे। श्रीभरतजीने भी कहा है—'आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस। २।१८३।' और नीति भी यही है—'दीपक काजर सिर धर्यो, धर्यो सुधर्यो धरोइ। दो० ९०३।' पाल-पोसकर अब सुध न लेना, वृक्षको लगाकर स्वयं काट डालनेके समान है, जो अनुचित माना गया है। यथा—'पालिकै कृपाल ब्याल-बालको न मारिये, औ काटिये न नाथ विषहू को रूख लाइकै। क० ७।६१।'

४ (क)—'सब भाँति समरथ'—पूर्व कई प्रकारका सामर्थ्य दिखा आये हैं—पंचमुख छमुख आदि तथा समस्त सुरासुर संगठन करके आपको जीत नहीं सकते, ऐसे समर्थ शूरवीर हैं। ब्रह्मा, शंकर और यम आदिके वरदानोंसे समर्थ है। कठिनसे कठिन काम आप खेलमें कर डालते हैं--ऐसे साहसी समर्थ हैं। अंजना माताके दुग्धसे शक्तिमान् है। पवनके पुत्र होनेसे समर्थ हैं। फिर स्वयं महारुद्रके अवतार और श्रीरामजीके दुलारे होनेसे समर्थ हैं। देवी-देव-दानव आदि हाथ जोड़े रहते हैं, लोकपाल आपके बसाये हैं। इत्यादि। अघटित-घटना-पटीयसी, उथपे-थपन थपे-उथपन आदि आपके विरुद हैं। कर्म, काल, चराचर जीव जगत् आपके अधीन हैं।—यही 'सब भाँति' समर्थ होना है। (ख)—'को तिलोक तो सो है?'—पद २४ में भीतर बाहरकी आँखोंसे देखकर अपना निर्णय

बताया था कि त्रिलोकीमें कोई आपके समान समर्थ नहीं है, और यहाँ कहते हैं कि आप ही बताइये, क्या कोई है ? जब कोई ऐसा है ही नहीं, तब किसीके संकोचकी भी बात नहीं रह जाती। इससे जान पड़ता है कि आप 'परिहास' कर रहे हैं, आप दुर्दशाका तमाशा देखनेके लिये देर कर रहे हैं। पिछले पदमें जो प्रश्न किया था कि विलंबका कारण आलस्य है या अनख है या परिहास या सिखावन, उसमेंसे यहाँ 'परिहास' को प्रथम लेकर उसका उत्तर देते हैं कि यदि 'परिहास' है, तो यहाँ—'चिरीको मरन खेल बालकनि को।' यह कहावत लागू होती है। मैं तो मरणान्त कष्ट पा रहा हूँ और आप इसे क्रीड़ा-स्वरूप समझकर खड़े तमाशा देख रहे हैं।

३०—घनाक्षरी

आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप[1] तें,
बढ़ी है बाँह[2] बेदन 'कही न सही[3]' जाति है।
औषध अनेक जंत्र मंत्र टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥
करतार भरतार हरतार कर्म काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कहो[4] रामदूत,

---

१ स्राप--ह०, मु०। २ बाहु--छ०, च०, पं०। बांह--ह०, व०, श०, मु०। ३ सही न कही—द्वि०। कही न सही--ह०, मु०। कही न सहि - छ०, च०, व०, श०, ज०। ४ कहो--ह०, ज०, मु०। कह्यो--छ०, च०, पं०, व०, श०।

ढील तेरी बीर मोहिं पीर तें पिराति है॥३०

शब्दार्थ—त्रिताप-पद १४, १६ देखिये। औषध = दवा। बादि = व्यर्थ। टोटका = तांत्रिक प्रयोग; लटका। मानना = करने या किसी कार्यके होनेके लिए प्रार्थना करना। कर्तार = सृष्टिरचयिता, ब्रह्मा। भर्तार = भरण-पोषण करनेवाले भगवान् विष्णु। हर्तार = संहारकर्ता श्रीशंकरजी। जगजाल = सारा जगत् प्रपंच। इताति = आज्ञापालन, आज्ञा। चेरा = दास। तें = से अधिक। पिराना = पीड़ा देना; व्यथित करना।

पद्यार्थ—बाहुकी पीड़ा (न जाने) अपनेही पापसे बढ़ी है या त्रितापसे या (किसीके) शापसे, न तो कही जाती है और न सही ही जाय। अनेक दवायें और अनेक यंत्र-मंत्र-टोटका आदि किये, वे सब व्यर्थ हुए। देवताओंको मनानेसे और भी बढ़ती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कर्म, काल तथा सारे जगत्-प्रपंचमें ऐसा कौन है जो आपकी) आज्ञा न मानता हो। रामदूत! तुलसी आपका दास है। 'तुलसी तू मेरा है'—यह आप कहदें*। हे बीर! आपकी ढील (अनुचित विलंब वा उदासीनता) मुझे (मेरी) बाहुपीड़ासे भी अधिक पीड़ा दे रही है।३०।

टिप्पणी—१ 'आपने ही पाप…'। [क] पद १६ में कहा था कि पाप, शाप और त्रितापसे आप मेरी रक्षा करते हैं, अतः विश्वास तो यही है कि पीड़ाके कारण ये नहीं हैं। फिर भी पीड़ाने इतना विह्वल कर दिया है कि संदेह होता है कि इन्हीं-मेसे कोई कारण हो, कुछ समझमे नहीं आता। 'कही न सही जाति' अर्थात् कितनी है, कैसी है—इसका वर्णन नहीं हो-

*'कह्यो' पाठका अर्थ होगा कि 'तुलसी तू मेरा है'—यह आपने कहा है।

सकता इतना ही कह सकेंगे कि दुःसह है। इसीको आगे 'बेदन कुभाँति सो सही न जाति' (पद ३७) और पूर्व 'बेदन विषम' (पद २६) कहा है। [ख]—'देवता मनाये अधिकाति'—से जनाया कि देवकृत भी नहीं है, वरन ऐसे किसीका किया हुआ है जो देवताओंको कुछ नहीं समझता अथवा देवता जिसके अधीन हैं। (श्रीशंकरजीके गण वीरभद्र, भैरव आदिकी करनी दक्षयज्ञमें पाठकोंने पढ़ी है)।

२ 'करतार भरतार···' इति। (क) विधि-हरि-हर तो इनके बालपनके तेजकी ओर दृष्टि न कर सके थे, उनकी आँखें तिलमिला गई थीं, चित्तमें खलबली मच गई थी। इससे स्पष्ट है कि वे अपनेसे इनको अधिक तेजस्वी जानते हैं। फिर तीनोंपर इनका उपकार है। ब्रह्मा और शिवजी तो रावणके हाथ बिक चुके थे, नित्य हाज़िरी देनी पड़ती थी। यथा 'बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं। क० ७।२।' रहे विष्णु भगवान सो सैकड़ों बार इन्होंने उस पर चक्रका प्रहार किया फिर भी कुछ बिगाड़ न सके। यथा 'विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे। वा० ३।३२।१०।', 'पीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ। वा० ५।१०।१६।' अतः उसका बल जानकर ये शंकित रहते ही थे। यथा 'साहेबु महेसु सदा संकित रमेसु मोहिं, महातप साहस बिरंचि लीन्हें मोल है। क० ५।२१।'—उस रावणका वध हनुमान्‌जीके बलसे शीघ्र सम्पन्न हुआ, ये सब उसके बंधन और शंकासे छूटे।—यह उपकार है। अतः त्रिदेव इनकी आज्ञा टाल नहीं सकते। 'कर्मकाल' आदिका आपके अधीन होना पद २४ में कह आये हैं। (ख) 'तू मेरो कहो'—भाव यह है कि यदि इनमेंसे किसीके द्वारा यह पीड़ा हुई है, तो आपके संकेतमात्रसे पीड़ा दूर होजायगी, आप केवल इतना कह दें कि 'तू

मेरा है' । मिलान कीजिये— एक बार तुलसी तू मेरा कहियत किन्न । जाहिं सूल निरमूल होहि सुख अनुकूल महाराज राम रावरी सों तेही छिन । वि० २५३।' (ग)—'ढील तेरी बीर…' —पद २८ में जो कहा था कि विलंबका कारण क्या आलस्य तो नहीं है उसीपर कहते हैं कि यदि ऐसा है तो सेवकके साथ ऐसा वर्ताव होनेसे आपके यशमें धब्बा लगेगा, यह भारी दुःख मुझे है, पीड़ाका दुःख उसके सामने कुछ नहीं है, क्योंकि 'काल पाइ फिरत दशा सबही की ।'

३१—घनाक्षरी

दूत राम राय को सपूत पूत बाय को,
समत्थ हाथ पाय को सहाय असहाय को ।
बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत,
रावन सो भट भयो मुठिका के घाय को ॥
एते बड़े साहेब समत्थ[1] को निवाजो आजु,
सीदत सुसेवक बचन मन काय को ।
थोरी[2] बाहु पीर की बड़ी गलानि तुलसी को,
कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाय को ॥३१

शब्दार्थ—बाय = वायुदेव । असहाय = जिसका कोई सहायक नहीं; निराश्रय । बाँकी = श्रेष्ठ; सुन्दर बीरतावाली । मुठिका (मुष्टिका) = मुक्का; घूँसा । घाय = चोट; घाव । निवाजो = कृपापात्र । सीदना = दुःख पाना; कष्ट झेलना । सुसेवक = खास दास । (पद १४, २१, २४ देखिये) । थोरी =

१ समत्थ--ह०, मु० । समर्थ--औरोंमें । २ थोरि--छ०, च०, पं० ।

थोड़ी ही। ग्लानि=खेद; खिन्नता; अक्षमता। लोप=अदर्शन; अभाव। लोपना=छिपाना; मिटाना; तिरोहित करना। प्रगट =प्रत्यक्ष; प्रसिद्ध। प्रभाय=प्रभाव; महिमा; शक्ति।

पद्यार्थ—आप श्रीरामचन्द्रजी महाराजके दूत और पवनदेवके सपूत पुत्र हैं। (स्वयं अपने) हाथ पैरके समर्थ और निराश्रयोंके सहायक हैं। आपकी श्रेष्ठ यशावली विख्यात है, वेद उसका गान करते हैं (कि) रावण-ऐसा भट एक मुक्के-की चोट भरका हुआ।—इतने बड़े समर्थ स्वामीका कृपापात्र, मन-तन-वचनका सुसेवक होकर आज कष्ट झेल रहा है। बाहुपीरकी तो थोड़ी ही बात है (वा, थोड़ीही ग्लानि है), किन्तु तुलसीदासको बड़ा खेद यह है कि (न जाने मेरे) किस पापके प्रकोपने आपके प्रत्यक्ष प्रभावको लुप्त कर दिया है।३१।

टिप्पणी—१ 'रावण सो भट भयो मुठिकाके घायको'—अर्थात् जो रावण लोकको रुलानेवाला था, जो समस्त लोकों-को भय देनेवाला था,—('रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभया-वहम्। वा० ३।३२।२१।')—वह महाबली रावण आपके एक मुक्केका हुआ। एकही मुक्केकी चोटसे 'वह काँप उठा और धरतीपर गिर पड़ा। उसके मुख, नेत्र और कानोंसे बहुत-सा रक्त गिरने लगा और वह चक्कर काटता हुआ रथके पिछले भागमें निश्चेष्ट होकर जा बैठा। वह मूर्च्छित होकर अपनी सुध-बुध खो बैठा। वहाँ भी वह स्थिर न रह सका, तड़पता और छटपटाता रहा।" (वा० ६।५८।११५-११७)।

२ 'एते बड़े साहेब···'—भाव कि समर्थ रक्षकके रहते कोई उसके आश्रितकी दुर्गति कर डाले, तो इसमें समर्थकी अप-कीर्ति है। वि० २५६ के—'तुम्हसे सुसाहिबकी ओट जन खोटो खरो काल की करम की कुसाँसति सहत ॥···मेरी तो थोरी है,

सुधरैगी बिगरियौ, बलि राम रावरी सों रहो रावरी चहत।' का भाव यहाँ भी है। अर्थात् बाहुपीड़ा तो थोड़ी-सी बात है, कभी न कभी मिटेगी ही।—'जीव सकल संतापके भाजन जग माहीं' अतः इस पीड़ाका सोच अधिक नहीं है। अधिक चिन्ता यह है कि आपकी महिमा प्रतिष्ठा बहुत है, वेद आपकी विरुदावली गाते हैं। आपके विरुद झूठे पड़ जायँगे, यह भारी दुःख है। शरणागतकी रक्षा न होनेसे सुयशमें बट्टा लग जायगा। न जाने मेरे किस कुभाग्यसे किस पापसे आपके प्रभावका अभाव हो रहा है. अवश्य मेरा कोई भारी पाप ही कारण होगा, नहीं तो 'अँधियारे मेरी बार क्यों त्रिभवन उजियारे' (वि० ३३)।—अतः मेरे कारणसे अपयश होगा, इसकी भारी ग्लानि है। यह मेरा अभाग्य ही है। ऐसाही अन्यत्र (श्रीरामजीसे) कहा है। यथा 'देऊ तो दयानिकेत देत दादि दीनन की, मेरी बार मेरें ही अभाग नाथ ढील की।' (क० ७।१८)।—

['मेरे किस पापके कारण आपकी सुविख्यात शक्ति अदृश्य होगई'—यह जाननेमे असमर्थ होनेके कारण विशेष चिन्ता है। (मु०)]

३२—घनाक्षरी

देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग,
छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम,
रामदूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं॥
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुजोग[1] रोग,
हनुमान आन सुनि छाड़त[2] निकेत हैं।

---

[1] कुरोग जोग--व०। [2] छाड़त--ह०,व०,मु०। छाँड़त--छ०,च०,पं०,श०।

क्रोध कीजै कर्म को प्रबोध कीजै तुलसी को,
सोध कीजै तिन्ह को जो दोष दुख देत हैं॥३२

शब्दार्थ—अचेत = जड़। वाम = कुटिल; दुष्ट; अहितमें तत्पर। पूतना—यह एक तो वह दानवी है जो बालक कृष्णको मारनेके लिये गोकुल गई थी। इसे पद २५ में 'बड़ी बिकराल बालघातिनी' कहा है। दूसरे, यह बालकोंका एक रोग है जिसमें उसे कभी अच्छी नींद नहीं आती, इत्यादि। यह रोग पूतना-द्वाराकृत बाधा मानी जाती है, अतः वह बालरोग 'बालग्रह पूतना' नामसे प्रसिद्ध है। माथे मान लेना = शिरोधार्य करना; सादर स्वीकार करना। कुजोग = ग्रहदशाओंके फेरसे उत्पन्न मनुष्यकी बुरी अवस्थाका संयोग। बुरा संयोग; कुत्सित योग। निकेत = स्थान। प्रबोध = आश्वासन; सान्त्वना; ढारस। सोध = संशोधन; सुधार; त्रुटि या दोषको दूर करना।

पद्यार्थ—देवी, देवता, दानव, मनुष्य, मुनि, सिद्ध और नाग (आदि) छोटे-बड़े जितने भी जड़-चेतन जीव हैं तथा बालघातिनी पूतना, पिशाचिनी (चुड़ैल), राक्षसी और राक्षस आदि अहितमें तत्पर रहनेवाले कुटिल प्राणी—(सभी) श्रीरामदूतकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हैं। घोर (अत्यंत बुरे एवं भयानक) यंत्र, मंत्र, गुप्त प्रयोग, कपट, बुरी अवस्थाके संयोग और रोग श्रीहनुमानजीकी आन सुनकर स्थान छोड़ देते हैं। (हे श्रीहनुमानजी ! मेरे खोटे) कर्मोंपर क्रोध कीजिये, (मुझ) तुलसीदासको ढारस दीजिये, जो (मेरे) दोष मुझे दुःख दे रहे हैं उनका सुधार करिये।३२।

टिप्पणी—१ 'देवी देव···नाग' में तीनों लोकोंके प्राणी आगए। नाग देव पातालके, देवी देव स्वर्गके और मनुष्य

भूलोकके निवासी हैं। पद ३०में 'को है जगजाल जो न मानत इताति है' यह कहा था, उसी 'जगजाल' की यहाँ व्याख्या है। ☞ यहाँ 'हनुमान्‌जीकी दोहाई' का प्रभाव दिखाया है।

२—'क्रोध कीजै कर्म…' इति। 'देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ, बापुरे बराक और राजा राना राँक को' यह पद १७ में बता आये हैं। यंत्र मंत्र कूट आदि आपकी आन सुनकर भाग जाते हैं, मैंने आपकी आन भी दी। (पद २६ देखिये)। फिर भी पीड़ा न गई। इससे अनुमान होता है कि आप ही रुष्ट हैं। अतः कहते हैं—'क्रोध कीजै कर्म को…'। पूर्व प्रार्थना की थी कि दोष सुना दीजिये—'दोष सुनाये ते आगेहुँ को हुसियार ह्वै हौं,' सो दोष भी अबतक न बताया। और पद २८ में पूछा था कि क्या अनखाये हुए हैं, इससे पीड़ा नहीं हरते? उन्हीं दोनों बातोंको लेकर यहाँ 'क्रोध कीजै…' कहा। भाव कि मुझ-पर क्रोध न करके मेरे प्रारब्ध संचित आदि कर्मोंपर क्रोध कीजिये, जिसमें वे नष्ट होजायँ और जिन दोषोंसे पापकर्मोंमें प्रवृत्ति होकर उनका परिणाम दुःख मैं भोग रहा हूँ उनका सुधार कर दीजिये। बस इतनेसे सब काम बन जायगा। इससे मुझे सांत्वना मिलेगी।—इस प्रार्थनाको स्वीकार करनेपर फिर पद २८ के 'सिखावन'का प्रश्न ही नहीं रह जाता। मिलान कीजिये—'अपने निवाजेकी पै कीजिये लाज, मेरी ओर हेरि कै न बैठिये रिसाइ कै। क० ७।६१।' दोनोंमें भाव-साम्य है।

३३—घनाक्षरी

तेरे बल बानर जिताये रन रावन सों[१],
तेरे घाले जातुधान भये घर-घर के।

१ से-छु०, प०, पं० ॥

तेरे बल रामराज किये सब सुरकाज,
सकल समाज साज साजे रघुबर के ॥
तेरे गुनगान सुनि गीरबान पुलकत,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर के ।
तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ,
बूझिये[२] न दास दुखी तोसे कनिगर के ॥३२

शब्दार्थ—घाले = वध किया या मारे जानेसे । घर-घरके भये = तितर-बितर या बेठिकाने हो गए। (श०सा०) । = घर-घरमें भागकर जा छिपे । (ह०) । सकल समाज साजे = सकल समाजके साज सजाये, अर्थात् युद्धमें, राज्यमें तथा वनमें (सर्वत्र) समाज सजाये । (ह०) । = समाजका संपूर्ण साज सजाया । (व०) । 'समाज साज साजे हैं'—पद १५ देखिए । गीरवान (गीर्वाण) = देवता । पुलकत = प्रेमसे रोमांचित होते हैं । सजल = प्रेमाश्रुपूर्ण । हाथ फेरना = प्यारसे हाथ रखना । बूझिये = चाहिये; उचित । कनिगर = नामकी लाज रखनेवाला; अपनी कीर्तिकी रक्षाका ध्यान रखनेवाला ।

पद्यार्थ—आपके बलने वानरोंको संग्राममें रावणसे जिताया। आपके द्वारा राक्षसोंके मारे जानेसे राक्षस घर-घर के हुए। आपके ही बलसे श्रीरामचन्द्रजी महाराजने देवताओंके सभी कार्य संपन्न किये । आपनेही श्रीरघुनाथजीके सभी समाज-साज सजाये । आपके गुणोंका गान सुनकर देवता प्रेमसे रोमांचित हो जाते हैं और विधि-हरि-हरके (तो) दोनों नेत्र प्रेमाश्रु-पूर्ण हो जाते हैं । हे कीशनाथ ! तुलसीके मस्तकपर हाथ

२ बूझिये–ह०, ज०, श०। देखिये--छ०, ज०, पं०, व० ।

फेरिये। आप-जैसे अपनी कीर्त्तिकी लाज रखनेवालेके दासका दुखित रहना उचित नहीं।३३।

टिप्पणी—१ 'तेरे बल बानर जिताये…' इति। [क]—प्रबल शत्रुको अथवा उसके द्वारा संहारको देखकर जब-जब वानर भागते थे तब-तब आप उनको सांत्वना देते और सहायता करते थे। —"वानरो ! तुम क्यों युद्धविषयक उत्साह छोड़कर भागे जा रहे हो ? तुम्हारा वह शौर्य कहाँ चला गया ?—'शूरत्वं क नु वो गतम्'। मैं युद्धमें आगे-आगे चलता हूँ। तुम सब मेरे पीछे आ जाओ। शूरवीरोंके लिए युद्धमें पीठ दिखाना सर्वथा अनुचित है।" [वा० ६।८२।३-४]। बस फिर तो वानर राक्षसोंपर टूट पड़ते थे। [ख]—'भये घर-घर के' का दूसरा अर्थ 'घरोंमें जा छिपते थे' है। वानरोंसे पीड़ित हो भाग जाते थे। यथा—'केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः। वा० ६।६०।७६।', 'सहमि सुखात वातजातकी सुरति करि, लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज कें। क० ६।६।', 'जो रन बिमुख फिरा मैं जाना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥ सर्वसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भए वल्लभ प्राना। ६।४१।'—[रावणके इन वचनोंसे भी छिपना पाया जाता है]। [ग]—'तेरे बल रामराज…'—पद ६ [६] तथा १५ [२ क] देखिये।

२ [क] 'गीरवान पुलकत…' इति। श्रीहनुमान्‌जीके कार्योंको देख देखकर देवता हर्षित होकर हर्षनाद करने लगते थे।…'नेदुर्देवाश्च' [वा०६।५६।११७]। जब उन चरितोंको कोई सुनाता है, तब उन रोमांचकारी कार्योंका स्मरण होनेसे वे कृतज्ञतावश पुलकित हो जाते हैं कि इन्हींके बलसे हम सब रावणके बंधनसे छूटे। दूसरे, भक्त-भगवत-चरित सुनकर हर्ष होना ही चाहिये। यथा—'कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती।

सुनि हरि चरित न जो हरषाती। १।११३।७।', 'संभुचरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा॥ ''नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी। १।१०४।' [ख]—विधि हरि-हरपर भी इनका उपकार है—पद ३० (२ क) देखिये। वे प्रेमाश्रुभरे नेत्रों-से अपनी परमकृतज्ञता दर्शाते हैं। कृतज्ञता माननेवालोंके ये लक्षण हैं; यथा— सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।''पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।५।३२।', 'प्रीतिहृष्टाङ्गो रामः' । वा० ६।१।१४), 'अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा। ६।१०६।' (श्री-सीताजी), 'नयन स्रवत जल पुलकित गाता। ७।२।१०।' (श्रीभरतजी)। देवताओंका केवल पुलकित होना कहकर त्रिदेव-की विशेषता दिखाई।

३ 'हाथ फेरो'''—भगवान्, पुण्यात्मा भगवदीय अथवा तदीय ध्यानपूत संतो एवं महात्माओंको कृपादृष्टि महान् कल्याणकारी कही गई है। कैसाही महापातकी क्यों न हो, उनकी कृपादृष्टि-मात्रसे उसे परमपदकी प्राप्ति होजाती है, साधारण रोग आदिकी तो बातही क्या। फिर यदि वे उसके सिरपर अपना हाथ धर दे, तब तो कहना ही क्या! श्रीरामजीने गीध-राजके सिरपर हाथ फेरा,— कर सरोज सिर परसेउ', तो जटायुकी 'बिगत भई सब पीर' (३।३०); सुग्रीवके शरीरपर हाथ फेर दिया तो उनका 'तनु भा कुलिस गई सब पीरा। ४।८।६।,' ब्रह्माके कर-स्पर्शसे शिशु वायु-पुत्रकी मूर्च्छा जाती रही थी। [पद २८ (१ घ) देखो।] 'तोसे कनिगरके'—भाव कि अपनी कीर्तिकी रक्षाके लिये अपने दासका दुःख शीघ्र मिटाइये।

३४—घनाक्षरी

पाल्यो[1] तेरे टूक को परेहू चूक मूकिये[2] न,
कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिये*।
भोरानाथ भोरे हो[3] सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये ।।
अंबु तू हौं अंबुचर अंब तू हौं डिंभ सो न
बूझिये बिलंब अवलंब मेरे तेरिये † ।।
बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि,
तुलसी के[4] बाँह पर लाँबी[5] लूम फेरिये ।।३४

शब्दार्थ—पाल्यो=पाला या भरण-पोषण किया हुआ हूँ; खा-पीकर पुष्ट हुआ। टूक=रोटीका टुकड़ा। परेहू=पड़नेपर भी। मूकना=दूर करना; छोड़ना; त्यागना। कूर=निकम्मा; कुमार्गी।=मंदबुद्धि, विमोहवश। (ह०)। कौड़ी दू को=दो कौड़ीका; किसी कामका नहीं। आपनी ओर=अपने बड़प्पन स्वामित्व या महिमा को। भोरे=भोले-भाले; सरल

---

१ पाल्यो--ह०, ज०, श०, मु०। पालो--छ० च०, पं०, व०। २ मूकियै -ह०। * ह० में सर्वत्र तुकान्तमें 'यै' है, छ०, ज०, में 'ए' है। ३ हो--ह०, श०। हौ—छ०, च०, मु०। हैं--ज०, पं०। ही--व०। † द्वि० जीने इस चरणमें—'अबु तू हों डिंभ सो न बूझिय बिलंब अंब अवलंब नाही आन राखत हो तेरिये।'—यह पाठ है। ४ के--ह०, ज०, मु०। कि--पं०। की—औरोंमें। ५ लामी—छ०, च०, पं०, व०। लाँबी--ह०, ज०, श०, मु०।

चित्तके; सीधे-सादे । पोषि=पालकर पुष्ट करके । तोषि =संतुष्ट करके; सब प्रकारसे तृप्त एवं आनन्दित करके । थापि =प्रतिष्ठा देकर । अवडेरना=झंझट झमेलेमें डालना । (श० सा०) ।=अनादर करना । (रा०) ।=बसने या रहने न देना, उद्वास करना । (तु० ग्रं०) ।=त्यागना । (ह०) ।=दुर्दशा करना । (ब०) । अंबुचर=जलचर । अंब=माता । डिभ= शिशु; छोटा बच्चा । सो=अतः, इस लिये । अवलंब=सहारा। मेरे=मुझे । पाहि=रक्षा कीजिये । लूम=लांगूल, पूँछ ।

पद्यार्थ—आपके टुकड़ोंसे पला हूँ, चूक पड़नेपर भी त्यागिये नहीं। मैं निकम्मा दो कौड़ीका हूँ, (पर) आप अपनी ओर देखिए। हे भोलानाथ ! आप भोले-भाले हैं, थोड़ेही दोष-पर रुष्ट हो जाते हैं। पाल-पोसकर, सब प्रकारसे संतुष्टकर, प्रतिष्ठा देकर अपनाये-हुए-का अनादर एवं त्याग न कीजिये। आप जल हैं (तो) मैं जलचर (मीन)हूँ, आप माता हैं (तो) मैं शिशु हूँ, मुझे आपका ही अवलंब है। अतः विलंब उचित नहीं। बालकको व्याकुल जानकर और प्रेमको पहचानकर रक्षा कीजिये। तुलसीकी बाँहपर लंबी लांगूलको प्यारसे फेर दीजिये।३४।

टिप्पणी—१ (क) 'आपनी ओर हेरिये' अर्थात् अपने बड़प्पनको देखिये, अपने स्वामित्व-स्वभावपर दृष्टि डालकर मेरा भला कीजिये। यथा—'करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई।', 'चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई' (वि० ३५), 'कीबी छमा निज ओर निहारी। वि० ३४।' (ख)—'भोरानाथ ! भोरे हौ…'—'भोलानाथ' संबोधनसे जनाया कि आप जो रुष्ट होगये हैं, संभवतः अपने पूर्वरूपका स्मरण करके ही रुष्ट हुए होंगे, क्योंकि भोलानाथ तो भोले-भाले हैं, इससे वे थोड़े ही में

रीझ जाते हैं और फिर थोड़े होमें खीझ जाते हैं—(यथा 'रीझि रीझि दीन्हे वर खीझि खीझि घाले घर आपने निवाजेकी न काहूके सरम। (वि० २४६)। (श्रीहरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि इसमे व्यंग्य है कि आप तो चतुर है, आपको तो ऐसा न करना चाहिये)। (ग) 'पाल्यो तेरे टूक…पोपि तोषि…'—पद २१ (१), २६ (१,३) देखिये।

२ [क] अनुचरका 'जल' ही जीवन और घर है और शिशुका अवलंब माता ही है, वैसेही मेरे अवलंब एकमात्र आप हा हैं। मछली जल विना और शिशु माताके विना जीवन-धारण कर नहीं सकते, वैसेही मै विना आपकी कृपाके जीवित न रह सकूँगा।—अतः आपको देर करना उचित नहीं। मेरे इस अनन्यगतिक अन्याश्रयरहित प्रेमको पहचानकर [आप सुजानशिरोमणि हैं ही], मेरी बाहुपीड़ाको दूर करें। पिछले पदमे सिरपर हाथ फेरनेकी प्रार्थना की थी, वह न कर सके तो अपनी परम विशाल पूँछही मेरी बाँहपर दूरसे फिरा दीजिये। पूर्व पद २१ और २६ में वता आये हैं कि 'बालक विलोकि बलि वारे ते आपनो कियो' तथा 'बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है', यहाँ 'बालक' शब्द देकर जनाया कि मैं वही बालक हूँ जो इस समय पीड़ासे विह्वल हूँ।—['लॉबी ' का भाव कि लंबी पूँछ देखकर दुःख भी लंबा हो जायगा अर्थात् भाग जायगा। (ह०)]

३५—घनाक्षरी

घेरि लियो रोगनि कुलोगनि[1] कुजोगनि ज्यों,
बासर सजल[2] घन घटा धुकि धाई है।

१ कुजोगनि कुलोगनि—व०।

बरषत बारि पीर जारिये जवासे ज्यों[३],
सरोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है ॥
करुनानिधान हनुमान महाबलवान,
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजैं ते[४] उड़ाई है।
खाये[५] हुते तुलसी कुरोग राढ[६] राकसनि,
केसरी-किसोर राखे बीर बरियाई है ॥३५

शब्दार्थ—कुजोगनि=ग्रहदशा (ग्रहोंकी स्थितिसे प्राप्त होनेवाली बुरी अवस्था, अभाग्य या दुर्दशा) के कुत्सित संयोगोंने । कुलोगनि=नीच कुत्सित लोगोंने। सजल=जलसे पूर्ण । घन घटा=उमड़े हुये मेघोंका घना समूह । धुकि धाना=तेजीसे दौड़ना; टूट पड़ना; झपटना । चपलतासे दौड़कर घेर लेना । (ह०) । जारिये=जला रहा है । यवासा=एक कटीला छोटी डालियोंवाला पौधा। इसकी पत्तियाँ वर्षामें झुलसकर गिर जाती हैं। धूम=धुँआँ । मूल=आदि कारण; उत्पत्तिका हेतु । धूम मूल=धुआँ जो मेघोंकी उत्पत्तिका आदि कारण है। यथा 'धूम कुसंगति कारिख होई ।···सोइ जल अनल अनिल संघाता । होइ जलद जग जीवनदाता । १।७।१२।' मलिनाई=मलिनता; पाप; दोष । हाँकि=ललकारकर । फूँकि=फूँककर (अर्थात् फूँकरूपी वायु द्वारा) । (ह०)'। फौजैं ते=उन घनघटाओं

२ सजल--ह०, ज०, पं०, श०, मु० । जलद--छ०, च०, व० ।
३ ज्यों सरोष--ह०, ज०, श०, मु० । जस रोष--छ०, च०, व० ।
४ ते--ह०, ज० । तै -पं० । तैं--छ०, च०, व०, श० । ५ खाये हुते--ह०, ज०, पं०, श० । खायो हुतो--छ०, च० । खाये हुतो--व० । ६ राड--ह०,ज०,श० । राढ़--छ०,च०,व० । राढु--पं० ।

मेघोंके दलोंको। राड=नीच, निकम्मा, कायर। राकसनि= राक्षसोंने। राखे=रक्षा की। बरिआई=बलात्; जोरावरीसे; बलपूर्वक।

पद्यार्थ—रोगों, नीच कुत्सित लोगों और ग्रहदशाओंके कुत्सित संयोगोंने मुझे वैसेही घेर लिया था, जैसे दिनमें उमड़े हुये सजल मेघोंका घना समूह चपलतासे दौड़कर एकदम आकर घेर लेता है। वे पीडारूपी जल बरसाते और विना अपराधके क्रोधपूर्वक मुझे यवासेकी भाँति जला रहे थे। (रोग आदि रूपी घनघटाओंका) मूल कारण (मेरे) पापरूपी धूम हैं*।

---

* उपर्युक्त अर्थ श्रीहरिहरप्रसादजीके मतानुसार है। वीरकविने—'अग्निकी तरह झुलसकर मूर्च्छित कर दिया है।' यह अर्थ किया। अर्थात् धूममूल = अग्नि। मलिनाई है = मूर्छित कर दिया। इनका पाठ है 'जवासे जस' = यशरूपी यवासे को।

मेरी समझमें सीधा अर्थ यह है—'यह धूम-मूल-मलिनाई है।' अर्थात् धूमका बादल पदवी पानेपर अपने मूल कारण अग्निको बुझाना उसकी नीचता [मलिन स्वभाव] ही है। [भुशुण्डीजीने नीचोंके उदाहरणोंमें सर्वप्रथम 'धूम' को ही गिनाया है; यथा 'जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥ धूम अनल सभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई। ७।१०६,९-१० '] । वैसेही मैंने इनका अपराध नही किया तो भी ये अपने नीच स्वभावके कारण मुझे जला रहे हैं। दूसरे शब्दोंमें इसको इस प्रकार कह सकते है—'यवासेको मेघ विना अपराध जला डालते हैं' यह क्यों? उसका उत्तर 'धूम मूल मलिनाई है' यह देते हैं। अंतिम चरणमें रोगनि आदिको 'राक्षस' कहा भी है और राक्षसोंका नीच स्वभाव होता ही है। श्रीपरमेश्वरीदयालजी लिखते हैं—"अर्थात् जैसे बादल अपने कारणस्वरूप

करुणानिधान महाबलवान् श्रीहनुमान्‌जीने (मेरी ओर) देख-कर हँसकर उन (रोग आदि घनघटाके) दलोंको ललकारकर फूँककर उड़ा दिया। कुरोगरूपी नीच राक्षसोंने तुलसीको खा ही लिया था, परन्तु वीर केसरीकिशोरने बलपूर्वक मेरी रक्षा की।३५।

टिप्पणी—१ 'घेरि लियो रोगनि…' इति। [क] यहाँ वर्षाऋतुके घनघोर बादलोंके रूपकद्वारा वर्णन उठाया है। [ख] यहाँ 'रोगनि कुलोगनि कुजोगनि' इतना मात्र कहा, आगे इनकी व्याख्या की है। पद ३८ के पाँयपीर, पेटपीर, बाँहपीर, मुखपीर' ये रोग हैं, जिनसे शरीर जर्जर होगया है। 'देव, भूत, पितर खल' यहाँके 'कुलोग' हैं। और 'करम, काल, ग्रह'—ये 'कुजोग' है। इन सबोंका एक-साथ एक-दम 'घेर लेना' वहाँका 'दवरि दमानक-सी दई है' है। इसीकी उपमा यहाँ देते हैं। जैसे ज़ोरसे उमड़े हुए जलसे भरे मेघोंका समूह ज़रा-सी देरमें दौड़ता हुआ टूट पड़ता है, वैसेही रोग आदि एकसाथ मुझपर टूट पड़े हैं। वर्षाका जल यवासेको जलाता है बाहुपीड़ाने मेरे शरीरको जर्जर कर दिया है। यवासाने मेघोंका कोई अपराध नहीं किया, वह (मेघ) सब वृक्षोंको तो हरा-भरा करता है किंतु यवासेको पत्रहीन कर देता है। 'सरोप विन दोष' अर्थात् मैंने किसीका कोई अपराध नहीं किया, फिर भी ये मुझपर क्रोध करके कष्ट दे रहे हैं,—पूर्व भी यह शिकायत कर आये हैं,—'सोऊ अपराध बिनु बीर बाँधि मारिये'—पद २२ तथा 'ढारो बिगारो मैं काको कहा' १६ (१) देखिये। (ख)—'धूम मूल मलिनाई है' अर्थात् मेरे पाप ही 'रोगनि कुलोगनि कुजोगनि'

धूमको नीचतापूर्वक बुझा डालते हैं, उसी प्रकार मेरे शरीरकी पीड़ा अपने आधारस्वरूप मेरे शरीरको ही जला रही है।"

के कारण हैं । विशेष पद्यार्थकी पाद-टिप्पणी देखिये ।

२ 'करुनानिधान ' इति । 'करुणानिधान' से सूचित किया कि बालकको विकल देखकर करुणा आगई। करुणा आतेही उन्होंने 'रोगनि' आदिको सहज ही फूँकमात्रसे उड़ा दिया, जैसे लोग मंत्र पढ़कर मुँहके फूँकसे व्याधाओंको दूर करते हैं। घन घटाओंको छिन्न-भिन्नकर उड़ानेको प्रबल पवन ही समर्थ होता है, (यथा 'कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं । ४।१५।'), अतः यहाँ 'हनुमान' को महाबलवान विषेपण दिया। इनकी ललकार सहित फूँक ही पवनका झकोरा है। 'खाये हुते' से जनाया कि मुझे मार डालनेमें कुछ उठा नहीं रक्खा था, यदि श्रीहनुमान्‌जीने करुणा करके बलात् मेरी रक्षा न की होती।

३६—सवैया

रामगुलाम तुही हनुमान,
गुसाईं[१] सुसाईं सदा अनुकूलो ।
पाल्यो हों[२] बाल ज्यौं आखर दू,
पितु मातु ज्यौं[३] मंगल मोद समूलो ।
बाँह की बेदन बाँहपगार,
पुकारत आरत आनँद भूलो ।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर रहों[४] दरबार परो लटि लूलो ॥३६

१ गुसाईं सुसाईं--ह०, ज०, छ०, च०, पं०, मु० । गुसाँइ सुसाँइ--व० । हों--ह०, ज०, मु० । हौं--औरोंमें । ३ सों--व० । ४ रहों- ह०, ज०, मु० । रहौं--औरोंमें ।

शब्दार्थ—गुसाईं=गो (इन्द्रियोंके) साईं (स्वामी) (ह०)। सुसाईं=उत्तम वा श्रेष्ठ स्वामी । आखर दू=दोनों अक्षरों ('रा' 'म') ने। समूलो=मूल सहित; जिसमें मूल या जड़ हो। [श० सा०]।=सु-मूल=सुन्दर मूल । पगार=गढ़; रक्षाके लिए बनी हुई चहारदीवारी। बाँहपगार=जिनकी बाँह ही आश्रितोंकी रक्षाके लिए गढ़ समान है ।=भुजाओंका आश्रय देनेवाले। लट जाना=दुर्बल और अशक्त हो जाना। लूला=बे हाथका; लुंजा। बेकाम, असमर्थ। दरबार=द्वार।

पद्यार्थ—हे श्रीहनुमानजी! श्रीरामजीके सच्चे सेवक एक आपही हैं। गुसाईं सुस्वामी श्रीरामजी आपपर सदा अनुकूल रहते हैं*। मंगल और मानसी आनन्दके सुन्दर मूल (वा, आनन्दरूपी मूलवाले) दोनों अक्षरों (रा, म) ने माता-पिताके समान बालक-जैसा मुझे पाला है। हे बाँहपगार! बाँहकी पीड़ासे मैं आनंद भूला हुआ आर्त्त होकर पुकार रहा हूँ। हे श्रीरघुवीर! पीड़ाको मिटा दीजिये, (जिसमें) मै दुर्बल अशक्त लुंजा होकर भी आपके द्वारपर पड़ा रहूँ।३६।

टिप्पणी—१(क) 'रामगुलाम तुही' अर्थात् सच्चे सेवक

---

*यह अर्थ ह० का मत है। अर्थान्तर—[१] हे गोस्वामी हनुमान्जी! आप श्रेष्ठ स्वामी और सदा श्रीरामचन्द्रजीके सेवकोंके पक्षमें रहने-वाले है। [व०]। (२) श्रीरामजीके सेवक आपही हैं, आप मेरे सदा अनुकूल रहनेवाले, इन्द्रियजित और अच्छे स्वामी हैं। [श०]। [३]–सु० ने 'रामगुलाम हितू हनुमान' पाठ दिया है और इस पदको केवल श्रीरघुवीरजीका विनय माना है।

एक आप ही हैं; यथा 'साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय रिनिया कहाए हौं विकाने ताके हाथ जू। क० ७।९६।' श्रीरामजी गुसाईं सुसाईं हैं; यथा 'स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं'। २।२६८।४।' श्रीसीताजीका वरदान है कि 'सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत। ६।१०६।' (ख)—'राम' नाम तुलसीदासके माता-पिता हैं; यथा 'राम रावरो नामु मेरे मातु पितु है। वि० २५४।', 'मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसुअरनि अरो। वि० २२६।' राम नाम मुदमंगलके मूल हैं। यथा 'नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद-मंगल-बासा। १।२४।२।' (ग) 'पाल्यो ''मोद समूलो' में भाव यह है कि आपके स्वामी-का नाम मुदमंगलमूल है; उससे पला हूँ। मैं भी रामगुलाम हूँ, आप रामगुलामशिरोमणि है। अतः इस नाते आपको मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये। रामनाम मंगल-मोदका मूल है फिर भी मैं कष्ट पा रहा हूँ,मेरी पीड़ा दूर करके नामकी कीर्तिकी रक्षा कीजिये।

२ (क)—'पुकारत आरत आनँद भूलो' अर्थात् व्याकुल होकर आर्त-पुकार कर रहा हूँ। भाव यह कि आर्तकी पुकार सुनकर आप तुरत रक्षा करते हैं, यथा 'तातें हौं बार-बार देव द्वार पर्यो पुकार करत। आरति नति दीनता कहें सुप्रभु संकट हरत। वि० १३४।', 'जेहि कर अभय किये जन आरत बारक विवस नाम टेरे। वि० १३८।', 'चले भागि कपि भालु भवानी। विकल पुकारत आरत बानी। ''पाहि पाहि प्रनतारति भारी॥ सकरुन वचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना। ६।६६।' अत. मेरी पुकार भी सुनकर मेरा भी दुःख दूर कीजिए। (ख)–'श्रीरघुवीर ''—इस चरणमें पंचवीरतायुक्त वीर राघव-से प्रार्थना करते हैं। इससे सहज कृपाल, कोमल, दीनहित,

दिनदानि, प्रीति पहचानकर भक्तपर स्नेह करनेवाले, इत्यादि जनाया। 'रहों परो लटि लूलो' से बाहुपीड़ाकी अत्यन्त विषमता और असह्यता दिखा रहे है, इतना कष्ट है कि लूले होकर रहना स्वीकार है पर यह पीड़ा नहीं स्वीकार है।

३७—घनाक्षरी

काल की करालता करम कठिनाई किधों[1],
पापके प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।
वेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन,
सोई बाँह गही जो गही समीर-डावरे॥
लायो तरु तुलसी तिहारो सो निहारि बारि
सींचिये मलीन भो तयो है तिहुँ तावरे।
भूतन की आपनी पराई[2] है कृपानिधान,
जानियत सबही की रीति राम रावरे॥३७

शब्दार्थ—कठिनता = कठोरता; निर्दयता। किधों = न जाने कि; अथवा; या। सुभाय = स्वभाव। बाय = वात। बावरे = उन्मत्त; प्रमत्त। कुभाँति = बहुत बुरी तरहकी। डावरे = पुत्रने। समीर-डावरे = पवनकुमारने। लायो = लगाया हुआ। सींचना = पटाना; पानी देना। मलीन भो = बदरंग हो गया; मुर्झाने लगा; सूखनेपर है तयना = तपना; संतप्त होना। तयो = ताव खागया। तावरे = तापोंसे। पराई = दूसरेकी या शत्रुकी की हुई। जानियत = जानते है।

१ किधों--ह०, मु०। किधौं--च०, ज०। कीधौं--छ०, व०, पं०, श०।
२ पराई है--ह०, ज०, मु०, श०। पराई हे--छ०, च०। परायेकी--व०।

पद्यार्थ—रात-दिनकी बड़ी बुरी तरहकी पीड़ा न जाने कालकी करालता है, या कर्मकी कठोरता है, या पापका प्रभाव है, या उन्मत्त वातका स्वभाव है। वह सही नहीं जाती। उसने उसी बाँहको ग्रसा है जिसे पवनकुमारने पकड़ा था। तुलसी-रूपी वृक्ष आपका लगाया हुआ है, वह तीनों तापोंसे ताव खा-कर मुरझाने लगा है, उसे देखकर कृपादृष्टिरूपी जलसे सींचिये। हे कृपासिंधु श्रीरामजी! पीड़ा भूतोंकृत है या अपने कर्मोंकी (भोग) है अथवा और किसीकी (करनी) है (आपही जान सकते हैं), आप सभीकी रीति जानते हैं।३७।

टिप्पणी—१ कर्म काल पाप, ताप, त्रिदोष तथा पर-कृतकी चर्चा पद २६ में कर आये हैं। पद २४, २५ भी देखिये। पद ३० में 'बेदन कही न जाति है' कहा था। वही यहाँ 'कुभाँति' से जनाया। सुना जाता है कि तुलसीदासजीकी बाईं भुजा कुछ दुबली होगई थी, अतः अनुमान है कि इसीमें पीड़ा उत्पन्न हुई थी। अपने लगाये हुए वृक्षकी रक्षा की-जाती है उसी भाव-में कहते हैं कि इसे सींचिये। पीड़ाको दूर करना यहाँ सींचना है। सुखी होजाना आनन्दका फिरसे होना वृक्षका हरा-भरा होना है। 'सबही की जानियत' क्योंकि आप स्वतः सर्वज्ञ हैं। अतः बाधक जो भी हो, उससे रक्षा कीजिये। इस पदसे निश्चित है कि पीड़ाका कारण गोस्वामीजी नहीं जानते।

३८—घनाक्षरी

पाँय-पीर पेट-पीर बाहु-पीर मुख[1]-पीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है।

१ मुख—ह०, ज०, मु०, श०। मुँह—छ०, च०, पं०, व०।

देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक-सी दई है॥
हौं[२] तो बिनु[४] मोल ही बिकानो बलि बारे ही[३] ते,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम राय ऐसी हाल कहूँ भई है ॥३८

शब्दार्थ—जर्जर = जीर्ण-शीर्ण; बेकाम। पीरमई = पीड़ा-मय। ('मय' यहाँ प्राचुर्य एवं तद्रूप दोनों अर्थोंमें है। शरीर पीड़ारूप होगया, अत्यन्त अधिक पीड़ा व्याप्त हो गई है। पितर (पितृ) = प्रेतत्वसे छूटे हुए पूर्वज। एक प्रकारके देवता जो सब जीवोंके आदिपूर्वज माने गये हैं। कविपुत्र सोमपा ब्राह्मणोंके पितृ माने गाये हैं। दवरि = दौड़कर; धावा करके; वेगपूर्वक आक्रमण (चढ़ाई) करके। दमानक = तोपों की बाढ़। (श० सा०) कड़ाबीन जिससे बीस-पचीस गोलियाँ एकबार ही निकलती हैं। (ह०)। सी = समान, सदृश। बिकानो = दास हुआ; गुलाम बना। बारे ते = बचपनसे। ओट = शरण, रक्षा, आड़। ललाट = मस्तक। कुंभज = महर्षि अगस्त्य ऐसे सामर्थ्यवान् कि जिन्होंने एक चुल्लूमें समुद्रको पीकर सुखा दिया। किंकर = दास। बूड़े = डूबे। गोखुरनि = गोपदसे बने हुये गड्ढेके जलमें। हाय = हा!; बड़े शोककी बात है। हाल = दशा।

पद्यार्थ—चरणोंकी पीड़ा, पेटकी पीड़ा बाहुकी पीड़ा,—सारा शरीरही पीड़ामय होकर जर्जर होगया है। देवता, भूत प्रेत पितर, कर्म, खल, काल और ग्रह सभीने (एकसाथ ही) धावा करके मुझ-

२—हौं—मु०, ह०। हौ—औरोंमे। ३ के—व०। ४—बिन—ह०।

पर तोपोंकी बाढ़-सी लगा दी है। मैं बलिहारी जाता हूँ। मैं तो बालपनसे ही (आपके हाथ) बिना मोलका ही बिका हुआ हूँ। अपने ललाटपर 'रामनामकी ओट' लिख रक्खी है। श्रीरामचन्द्रजी महाराज ! (समुद्रको एक चुल्लूमे सुखा देनेवाले महर्षि) अगस्त्यका सेवक, हाय-हाय !, गोपदजलमें व्याकुल होकर डूब जाय ! (बड़े आश्चर्यकी बात है। ऐसा तो होना न चाहिये।)—क्या ऐसी दशा कहीं हुई है ? ।३८।

श्रीबैजनाथजी—'पॉय पीर' बाई, गृद्रसी आदि। 'पेट पीर' उदावर्त गुल्मादि। 'मुख-पीर' दाँत मसूढ़े आदिका शूल। 'बाहुपीर' अपबाहुक आदि। 'देव'=ग्राम-देव। भूत' भैरव आदि। 'पितर'—पूर्व वंशमें मरे हुए। 'कर्म'—पूर्व किये हुये कुटिल कर्म। 'खल काल'—दुष्ट कलिकाल।—[वीरकविने 'खल' को 'ग्रह' का विशेषण माना है। श्रीकान्तशरणजीने बैजनाथ और वीरकवि दोनोंका अनुकरण किया है। श्रीहरिहरप्रसादजीने 'खल' को भी दमानक देनेवालोंमे गिना है। स्मरण रहे कि कविने पद १८ में खलोंकी चर्चा की है,—'बानर बाज बढ़े खल खेचर लीजत क्यों न लपेटि लवा से।' और आगे पद ४३ के 'व्याधि भूत जनित उपाधि काहू खलकी' में स्पष्ट ही 'खल' को भी कहा है। कर्म, काल और ग्रह तो जब बुरे होते हैं तभी दुःख देते हैं, यह तो सभी जानते है।]

टिप्पणी—१ (क) 'बिनु मोल बिकानो'—भाव कि मुझे पूछनेवाला संसारभरमें कोई नहीं है; इसीसे मै बिना मूल्यके आपका गुलाम हुआ। यथा—'कीजै दास दास तुलसी अब, कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ। वि० १५३।', 'जौं पै कहूँ कोउ बूझत बातो, तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ?। वि० १७७।' (ख)—'बारे ही ते'—यही आगे पद ४० में कहा है,— बालपने

सूधे मन राम सनमुख भयो ।' गुरु श्रीनरहर्य्यानन्दजीने इन्हें बालपनमें भगवत्-सम्मुख कर दिया था। कंठी, तिलक, माला आदि वैष्णव बाना तभीसे धारण करने नाम जपते हैं। यथा —'मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि सेवा-सुखद सदा हों बिरुद बहतु हों। वि० ७६।' (ग) 'ओट रामनाम की ललाट लिखि लई है'—गुरुने संस्कार करके रामनामजपरूपी सेवा दी थी,—'काम इहै नाम द्वै हों कबहुँ कहतु हों।' तबसे राम-नामहीका भरोसा विश्वास है, नामही गति और अवलंब है। नामकी ओट ली; यथा 'बड़े कुसमाज राज आजु लों जो पाये दिन महाराज केहू भाँति नाम ओट लई।...मोको गति दूसरी न बिधि निरमई। वि० २५२।' [ब्रह्माने यही ललाटपर लिखा है]; 'बड़ी ओट रामनामकी। वि०१४६।', 'सकल अंग पद बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है। वि० १७०।', 'अपनो भलो रामनामहितें तुलसिहि समुझि परो। वि० २२६।', 'रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को', 'नाम अवलंब अंबु दीन मीनराउ सो।' (वि० ६८ १८२)। इत्यादि।—भाव यह कि नामके नातेसे कृपा कीजिये। यथा 'कीजै कृपा दास तुलसी-पर नाथ नामके नाते। वि० १६८।'. 'कीजै सँभारि कोसलराय। और ठौर न और गति अवलंब नाम बिहाय। वि० २२०।' [और भाव ये हैं—१ 'भाव कि कर्मरेख नामकी आड़में पड़ जाय' (ह०)। २—तात्पर्य कि रामनाम मेरे भालके कुअंकोको मिटा देगा यह विश्वासकर उसका आश्रय लिया। अथवा भाव कि मस्तकपर नाम लिखकर रामगुलामीका तमगा लगाया है। (वै०)] (घ)—'हों तो...लई है' मे भाव यह है कि राम-गुलाम तथा रामनामाश्रितको उपर्युक्त साँसति न होनी चाहिए। नामाश्रितको देव-भूतादि द्वारा इस प्रकार कष्ट होना तो ऐसा ही है, जैसे समर्थ कुंभजका सेवक गोपदमें डूब जाय, कुंभज

उसे न बचा सके। आपके नामकी महिमा शंकरजीने तो यह कही है कि 'दंभहू कलि नाम-कुंभज सोच-सागर सोसु । मोद मंगल मूल अति अनुकूल…। वि० १५६।'

'कुंभज':—घटसे उत्पन्न होनेके कारण महर्षि अगस्त्यका यह नाम भी है। कालकेय नामक राक्षसदल रातमें आकर मुनियोंका नाश करते और समुद्रमें छिप जाते थे। पता चलने-पर देवताओंने अगस्त्यजीसे उसे सुखा देनेकी प्रार्थना की। अगस्त्यजीने श्रीरामनामके बलसे सब जल पी लिया।— 'सोख्यो सिंधु घटजहूँ नामबल हार्‍यो हिय खारो भयो भूसुर डरनि। नाम महिमा अपार…।' वि० २४७', 'कलसजोनि जिय जानेउ नाम प्रताप। कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जापु। बरवै ५५।'

३६—घनाक्षरी

बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि,
मुँहपीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं।
राम नाम जप-जाग कियो चाहों[1] सानुराग,
काल कैसे दूत भूत कहा मेरे[2] मान हैं॥
सुमिरे सहाय राम लषन आखर दोऊ,
जिन्ह के समूह[3] साके जागत जहान हैं।
तुलसी सँभारि ताड़का सँघारि भारी भट,
बेधे बरगद से बनाइ बान बान हैं॥३६

१ चहौं--व०। चहो श०। २ मेरो–ह०, सु०। ३ साके समूह--छ०, च०, पं०।

शब्दार्थ—बाहुक = बाहुपीड़ा। लीचर = अशक्ति, शिथिलता। (तु॰ ग्र॰, व॰)। = दुबलापन-(मु॰)। लीचड़; जल्दी न छोड़नेवाला। (श॰ सा॰)। सुबाहु, मारीच—ये दोनों ताड़काके पुत्र थे। केतुजा = सुकेतु यक्षकी कन्या जो महर्षि अगस्त्यके शापसे राक्षसी हो गई थी। = ताड़का। जाग = यज्ञ। काल कै से दूत = काल (यम)-दूतके समान। कहा (= क्या) मेरे मान हैं:—मेरे मान (अख्तियार वा वश) के हैं ? अर्थात् मेरे सामर्थ्यके बाहर हैं, मेरे हटाये नहीं हट सकते। शाका = यश; कीर्ति, बड़े-बड़े काम (जो सब लोग न कर सकैं) जिनके कारण कर्ताकी कीर्ति हो। समूह = समुदाय ढेर। जागना = जगमगाना, चमचमाना। सँभारना = बिगड़ी दशामें सहायता करना; रक्षाका भार अपने ऊपर लेना। बेधना = छेदना; घाव करना। बनाइ = बनाकर = भली भाँति; पूर्णरूपसे।

पद्यार्थ—बाहुकी दुर्बलता-अशक्तारूपी मारीच बाहुपीड़ारूपी नीच सुबाहुके साथ सम्मिलित है (अर्थात् बाहुपीड़ाके साथ-साथ बाहुमें दुर्बलता और अशक्तताका होना ही मारीचका सुबाहुके साथ मिलना है) *। ताड़का मुखकी पीड़ा है।

* 'मिलि' शब्दसे अर्थमें अड़चन पड़ गई। बैजनाथजी, ना॰ प्र॰ सभा तथा वीरकविने 'लीचर' का अर्थ देहाशक्ति [क्षीणता] करके उसे 'मारीच' से रूपित किया है। श्रीहरिहरप्रसादजीने 'नीच लीचर रोग अर्थात् नेत्रपीड़ा' को मारीच माना है। इन्होंने दूसरा अर्थ—'वा, बाहुपीड़ा नीच सुबाहु और नीच मारीच दोनों मिलि [मिले] है'—यह किया है। बैजनाथजीने—'देहकी जर्जरतारूपी मारीच सहित नीच सुबाहु मिलकर सबल हैं।' और वीरकविने 'मिले हुये हैं'—अर्थ किया है।

(अन्य सब) कुरोग (उनकी सेनाके) राक्षस हैं। मैं अनुराग-पूर्वक रामनामजपरूप यज्ञ करना चाहता हूँ। (परन्तु) काल-दूत सरीखे ये भूत क्या मेरे मानके हैं? जिनके यशसमूह संसारमें जगमगा रहे हैं, उन (रकार-मकार) दोनों अक्षरों-रूपी श्रीराम-लक्ष्मणका स्मरण करनेसे वे सहायक हुये। मुझ तुलसीदासकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेकर उन्होंने ताड़का-का वध करके भारी-भारी योद्धाओंको बाण-बाणसे बरगद सरीखा भली भाँति बेध डाला।३६।

टिप्पणी—१ ☞ ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जब यज्ञ करने लगते थे, तब ताड़का, सुबाहु, मारीच और उनकी सेनाके राक्षस उसमें बाधा डालते थे। श्रीरामलक्ष्मणजीने उनकी रक्षा-का भार अपने ऊपर लेकर प्रथम ताड़काका वध किया। यथा—'पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनिभय हरन। १।२०८।…सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥ एकहि बान प्रान हरि लीन्हा॥' फिर मुनि जब यज्ञ करने लगे तब 'आपु रहे मखकी रखवारी'। मारीचको तो थोथे ही बाणसे लंकातटपर फेंक दिया। फिर सुबाहुको एक ही बाणसे मार डाला। श्रीलक्ष्मणजीने अपने बाणोंसे अन्य राक्षसोंका नाश किया।—इसीका रूपक इस पदमें है।

२ 'पिछले पदमें 'पैर', 'पेट', बाहु' और 'मुख' को कह-कर सारे शरीरका जर्जर और पीड़ामय होना कहा था। प्रस्तुत पदमें बाहुकी पीड़ाको सुबाहु और उसके साथकी क्षीणता अथवा देहकी अशक्तिता (जर्जरपन) को मारीच कहा गया। मुखपीड़ाको ताड़का और 'पाँयपीर, पेटपीर तथा अन्य अंगोंकी पीड़ा'—इन बहुतसे कल्पित रोगोंको सेनासे रूपित किया है।

३ 'राम नाम जप जाग…'—'जप' भी यज्ञ है। जप-

यज्ञ भगवानका स्वरूप है, यथा 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' [गीता १०।२५]। मारीच आदि विश्वामित्रजीके यज्ञमें आकर उपद्रव करते, मुनिको सताते थे। मुनि उनसे भयभीत थे; यथा 'अति मारीच सुबाहुहि डरहीं। १।२०६।३।' मुनि यज्ञका अनुष्ठान कर चुके थे, किन्तु मारीच आदिके कारण उसे कर न सकते थे। वे चिन्तित थे। भगवानके बिना कोई राक्षसोंको मार न सकता था।—'हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी। १।२०६।५।' यहाँ बाहुपीर, मुखपीर और देहकी जर्जरता आदि मेरे राम-नामजपमें बाधक हैं। ये कालदूतके समान हैं, [कालके दूत प्राणीके शरीरसे जीवको निकालते हैं, जिससे उसे महान् कष्ट होता है और वह मर जाता है], मुझे ये मारही डालेंगे। अतः मैं बहुत भयभीत हूँ। मारीच आदि विश्वामित्रके मानके न थे, वैसेही ये रोग मेरे मानके नहीं। विश्वामित्रने यज्ञरक्षा तथा राक्षसोंके नाशके लिए श्रीरामलक्ष्मणको वरण किया। मैंने रकार-मकार, रामनामके दोनों वर्णोंको सहायकरूपमें वरण किया। रामनामके वर्णोंका भूरि-भूरि यश जगत्में विख्यात है कि इन अक्षरोंको उलटे, सीधे कैसेहू जपनेसे ये कल्याण करते हैं और कौन कहे, मरते समय मुखसे कोई ऐसा शब्द भी निकल जाय, जिसके अंतमें रकार-मकार हों तो भी ये भवसागर पार कर देते है। मानस बालकांड दोहा १६ से दोहा २० तक दोनों वर्णोंका माहात्म्य भी देखिये।—वाल्मीकि और यवनकी कथा सब जानते हैं।

४ 'बेधे बरगदसे बनाइ…'—वहाँ ताड़का, सुबाहु और मारीच आदि सबको एकही-एक बाणसे बेधा। स्त्रियाँ बरगदा-ही अमावस्यापर आँटेमें मोयन देकर और गुड़के शर्बतसे सानकर उसके गोल-गोल बरगद बनाती हैं और उन बरगदोंको

पूरी लंबी-लंबी पीली सींकोंसे बेध देती हैं। मेरी समझमें वही उदाहरण यहाँ दिया गया है। रामनामके अक्षरोंके समूह यश ही समूह बाण हैं। इनकी महिमासे बाहुपीर आदिका नाश हुआ। वहाँ प्रथम ताड़काका वध हुआ, यहाँ प्रथम मुखपीड़ा नष्ट हुई; क्योंकि जप मुखसे होता है।

[(१) श्रीवैजनाथजी—"मुखपीर ताटकाको प्रथम नष्ट कर फिर सुबाहु आदिको बान बनाय तथा बरगदके बाणोंसे बेधे। पक्के शुष्क आमके फलका नाम बान है। यथा पक्का आमफल बेधनेमें सुगम तथा बरगदके पके फल बेधनेमें सुगम; वैसेही बनाय राक्षसोंको बेधे। बानोंसे बेधे अर्थात् रामनामने अपने प्रतापरूपी बानोंसे व्याधिरूपी राक्षसोंका सहजही में नाश किया।" (२) श्रीहरिहरप्रसादजी—'बरगदका पेड़ जैसे बरोहों-से बेधा रहता है, वैसे ही अनेक बाणोंसे बेध डाला···।' (३) श्री श्रीकान्तशरणजी—काली घटाकी भाँति राक्षसी सेना आकाशमार्गसे आई। श्रीरामलक्ष्मणजीने नीचेसे ही असंख्य बाणों-से उन्हें बेधा, जैसे बरगद अपने लटकते हुए सोरों (बरोहों) से शोभा पाते हैं। वैसे वे सब वोर बाणोंसे बेधे जानेपर दिखाई पड़े। काले राक्षसोंकी सेना सघन पल्लववाले बरगद वृक्षके समान हुई। बाण उनमें बरोहोंके समान देख पड़ते थे]

४०—घनाक्षरी

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
राम नाम लेत माँगि खात टूक-टाक हौं।
परयो लोक रीति में पुनीत प्रीति रामराय,
मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं॥

खोटे-खोटे आचरन आचरत अपनायो,
अंजनीकुमार सोध्यो राम-पानि-पाक हौं।
तुलसी गोसाँई[१] भयो भोंडे दिन भूल गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं।४०।*

शब्दार्थ—सूधे = प्रपंचरहित शुद्ध, सरल, निष्कपट। सनमुख (सम्मुख) = शरणागत, शरणमें प्राप्त। टूक-टाक = पके अन्नकी भिक्षा, मधुकरी। लोकरीति = सांसारिक व्यवहार। (ज०)। पुनीत = पवित्र, निष्कृत। तरकि = तर्क करके। = ऊहापोह उधेड़बुनमें पड़कर। (श० सा०)। तराक (तड़ाक) = चटपट; तुरंत। खोटे = बुरे। आचरण = चालचलन; बर्ताव। आचरना = व्यवहार करना। पानि (पाणि) = हाथ। सोध्यो = शुद्ध किया गया। पाक = पवित्र। भोंडे = निकम्मे, खोटे, बुरे। निदान = अंतमें, आखिर। यथा 'जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।' = हद दर्जेका, निकृष्ट। परिपाक = परिणाम; पूर्ण; नतीजा; खूब पका हुआ।

पद्यार्थ—बालपनमें ही स्वाभाविक शुद्ध मनसे मैं श्री-रामजीके शरणागत हुआ, 'राम' नाम लेता और मधुकरी माँग-कर खाता था। (फिर) लोकरीतिमे पड़कर मोहवश तर्कणा कर-करके मैं श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी पवित्र प्रीतिको तड़ाक-से तोड़ बैठा। खोटे-खोटे आचरण करते हुए (भी) श्रीअंजनी-कुमारने मुझे अपनाया और श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र हाथोंसे मैं शुद्ध किया गया। तुलसी 'गोसाईं' हुआ (अर्थात् मुझे सब गोस्वामी या गोसाईं तुलसीदास कहने लगे। यह प्रतिष्ठा मिली।

१ गोसांई--ह०। गोसाइं--छ०, च०, ज०, प०, मु०, श०। गोसाईं--व०। * द्वि० जा० की पुस्तकमें यह कवित नहीं है।

प्रतिष्ठा पाकर) पिछले खोटे दिन भूल गया। आखिर उसका निकृष्ट परिपक्व फल पा रहा हूँ ।४०।

टिप्पणी—१ 'बालपने सूधे मन…'—बालपनमें मन छल, संसारी प्रपंच तथा कामादि विकारोंसे रहित शुद्ध और सरल होता है, उस समय उसमें जो बीज बो दिया जाता है वही आगे संस्कार बनता है। श्रीनामदेवजी, श्रीधनाजी, श्री-मीराबाई, सिलपिल्लेभक्ता बाइयों आदिकी कथायें प्रसिद्ध हैं। शुद्ध मन होनेसे श्रद्धा, विश्वास भी उस समय जड़ पकड़ लेते हैं। उस बाल्यावस्थामें हो श्रीनरहर्यानन्दजीने इनको भगवत्-सम्मुख किया और रामनाम जपनेकी आज्ञा दी। बड़ी श्रद्धासे ये नाम-जपने लग गये।—उसीकी ओर यहाँ संकेत है।—'मांगि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि। दो० ४६४।'

२—'पर्यो लोकरीतिमें…'—'भक्तिरसबोधिनी टीका भक्तमाल तथा प्राचीन महात्माओंने जो जीवनियाँ लिखी हैं उनके मतानुसार श्रीतुलसीदासजीका विवाह हुआ था, यही 'लोकरीतिमें पड़ना' है। स्त्रीके वचनसे फिर वैराग्य हुआ और ये काशीजी आये। यहाँ श्रीहनुमान्‌जीने दर्शन देकर इनको चित्रकूट जानेको कहा, फिर चित्रकूटमें श्रीरामजीके दर्शन हुए। —'चित्रकूटके घाट पर भइ संतनकी भीर। तुलसीदास चंदन घिसत तिलक देत रघुबीर।'—यह दोहा प्रसिद्ध है। इष्टदेवको पहचानकर ये उनके चरणोंपर गिरे। भगवान् श्रीरामने इनके सिरपर हाथ रक्खा।—यह श्रीरामजीके पवित्र कर-कमलोंसे शुद्ध किया जाना है। वि० २६४ के 'तुलसी तोकों कृपाल जो कियो कोसलपाल। चित्रकूटको चरित चेति चित करि सो।' में इसीका संकेत है। अथवा, नाम रटनेसे प्रतिष्ठा बढ़ी, बहुत लोग आने लगे, लोकव्यवहार बढ़ा, पुजानेपर प्रीति हुई, भजन

में कमी होगई। अथवा, प्रतिष्ठा पानेपर मद होजाना लोकरीति है, (यथा 'नहि कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं। १।६०।८।') उसी रीतिमें पड़ गया अर्थात् मद होगया।

३—'मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं'—तर्कणाका कारण मोह है। श्रीगरुड़जी एवं श्रीपार्वतीजीको सगुण ब्रह्म श्रीरामके चरितमें मोहवश संदेह हुआ और उससे उनके मनमें तर्कणायें हुईं। यथा 'खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोह बस तुम्हरिहिं नाईं। ७।५६।२।' (यह शिवजीने गरुड़के संबध-में कहा है। इसमें दोनोंका मोहवश तर्क करना आगया)। भजनानंदीको तर्कसे दूर रहना चाहिये; यथा 'अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहिं भजहि तर्क सब त्यागी। ६।७३।२।' मनमें तर्क उत्पन्न होनेसे वह श्रद्धा न रह गई और श्रद्धा न रहनेसे 'पुनीत' प्रीति भी जाती रही, केवल दिखाऊ प्रीति रह गई।—'नाना वेष बनाइ दिवस निसि पर वित जेहि तेहि जुगति हरौं। एको पल न कबहुँ अलोल चित हितदै पद सरोज सुमिरौं: वि० १४१।', 'उदर भरौं किंकर कहाइ बेंच्यों विषयन्हि हाथ हियो है। वि०७१)।' (वि० १४१-१४३ तथा २०८में कहे हुये आचरण खोटे आचरण हैं)। मिलान कीजिये—'करत जतन जासों जोरिबेको जोगीजन, तासों क्योंहूँ जुरी सो अभागो बैठो तोरि हौं। वि० २५८।'

४ 'तुलसी गोसाँईं भयो …'—लोग 'गोसाईं' विशेषण देकर नाम लेने लगे यह प्रतिष्ठा मिलनेसे गर्व होगया, भूल गये कि पूर्व टुकड़े माँगकर खाता था, मैं वही हूँ।—'पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि। दो० ४६४।' भगवान्को गर्व नहीं भाता। भक्तमें गर्व उत्पन्न होतेही वे उसे उखाड़नेका उपाय करते हैं। नारदको गर्व होने पर 'उर अंकुरेउ गर्व-तरु-

भारी। वेगि सो मैं डारिहौं उखारी।'--यह प्रभुने कहा है। अतः विचारते हैं कि यह वाहुपीड़ा उसीका परिणाम है।

४१—घनाक्षरी

असन--बसन--हीन विषम--बिषाद--लीन,
देखि दीन दूबरो करै न हाय-हाय को।
तुलसी अनाथ सनाथ सो रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय को॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइगो[1],
विहाय प्रभु भजन वचन मन काय को।
ताते तन पेखियत घोर बरतोर मिस,
फूटि-फूटि निकसत (है)[2] लोन राम राय को ४१

शब्दार्थ—अशन-वसन=भोजन-वस्त्र। हीन=रहित। विषम=कठिन, भयंकर। विषाद=दुःख। लीन=डूबा हुआ, निमग्न। हाय हाय करना=शोक प्रकट करना, तरस खाना। दूबरो=दुर्वल, पुरुषार्थहीन। पति=प्रतिष्ठा। भरुहाइगो=फूल उठा, अपनेको बड़ा समझने लगा। काय=शरीर; तन; कर्म। पेखियत=दिखाई दे रहा है, देख पड़ता है। बरतोर=बाल उखड़नेसे जो फोड़ा उत्पन्न हो; बलतोड़। फूटि-फूटि=फोड़-फोड़ कर। लोन (लवण)=नमक। लोन निकलना=नमकहरामी (कृतघ्नता) का फल पाना।

पद्यार्थ—जिस तुलसीको भोजन-वस्त्ररहित, कठिन दुःख मे डूबा हुआ, दीन और दुबला देखकर कौन (ऐसा था जो)

---

१ भरुआइगो-छ०, च०। २ है--ह०। औरोंमें नहीं है।

'हाय ! हाय !' नहीं करता था [अर्थात् सभी तरस खाते थे], उसी अनाथ [तुलसी] को श्रीरघुनाथजीने सनाथ किया।—शीलसिंधुने उसे अपने शीलस्वभावका [यह] फल दिया। इसी बीचमें यह नीच प्रतिष्ठा पाकर फूल उठा, प्रभुका मन-कर्म-वचनका भजन [जो करता था, उसे] छोड़ दिया। इसीसे शरीरमें भयंकर बलतोड़के बहाने महाराज रामचन्द्रजीका नमक फूट-फूटकर निकलता दिखाई दे रहा है।४१।

टिप्पणी—१ वस्त्र-भोजनरहित, 'टूकनि को घर-घर डोलत कँगाल' [पद २६], इत्यादि दशा भी विषम विषादका कारण है, क्योंकि 'नहि दरिद्र सम दुख जग माहीं। ७।१२१। १३' 'अनाथ सो सनाथ कियो' अर्थात् मुझे विषम-विषादग्रस्त दीन दुर्बल देख मेरे दुःख-दीनताको दूर कर दिया, मुझे अपना लिया, जिससे फिर दूसरा द्वार न देखना पड़ा। यथा 'बाँध्यो हौं करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़, सुनत दुसह हौं तो सासति सहतु हौं। आरत-अनाथ नाथ कोसलपाल कृपाल लीन्हों छीनि दीनु देखो दुरित दहतु हौं। वि० ७६।'

२ 'दियो फल सीलसिंधु'' '—किसीके दोषको न देखना, किसीपर रुष्ट न होना सबपर दया करना, दीन-हीन-मलीन कैसा भी कोई हो उसका सम्मान करना, भक्तके अपराधको अपना अपराध मान लेना, दीन-मलिनको भी शरणमें आने-पर अपना लेना, (यथा 'कपि केवट कीन्हे सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाय अनुसरिये। वि०२७१।', 'आरत अनाथ दीन मलिन सरन आये राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराज को। क० ७।१३।'), अपराधीपर भी क्रोध नहीं करना, इत्यादि सब 'शील' है। इसी स्वाभावसे अपना लिया, नहीं तो मेरी करनी ऐसी कहाँ थी कि मुझे अपनाते।

३—'नीच पति पाइ ...'—प्रतिष्ठा पानेपर गर्व होजाना नीचता है। भगवानने न अपनाने योग्य (मुझ) को अपने शील स्वभावसे अपनाया, मेरी दीनता दूर कर दी। मेरी याचकता जाती रही। अब मुझे मन-कर्म-वचनसे उनका भजन ही करना उचित था। भजन छोड़ देना प्रभुके उपकारकी भुला देना है, कृतघ्नता है। उसीका फल यह कष्ट है। यथा 'सीतापति सारिखो सुसाहिब सीलनिधानु कैसें कल परै सठ बैठो सो बिसरि सों। वि० २६४।' नहीं तो प्रभुही जिसके एकमात्र गति हैं उसपर विपत्ति कहाँ ? यथा—'वचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु बूझिय बिपति कि ताही ॥ ५।३२।२।'—पद ४० (२, ३, ४) के सब भाव यहाँ भी हैं।

४२—घनाक्षरी

जीवौं[1] जग जानकीजीवन को कहाइ जन,
मरिबे को बारानसी बारि सुरसरि को।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे[2] ठाँय[3],
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको ॥
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,
मेरे मन मान है न हर को न हरि को।
भारी पीर दुसह सरीर ते बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ॥४२

१ जीवो--ह०, मु०। जीवों--ज०। जीवौं--छ०, च०, पं०, श०। जिओं--च०। २ ऐसो--ह० मु०। ३ ठाँय--ह०, ज०, मु०। ठाउँ--छ०, च०, द्वि०, श० [इनने शब्दार्थमें 'ठाँय' दिया है]।

शब्दार्थ - जीवो = जी रहा हूँ; जीवन बिता रहा हूँ। वाराणसी = काशी। बारि सुरसरि को = गंगाजल (की प्राप्ति) अर्थात् गंगाजल पीनेको मिल रहा है, अंतमें मिलेगा, अस्थि गंगाजलमें पड़ेंगी, गंगातटपर निवास है, अतः तटपर ही शरीर छूटेगा। गंगातटपर मरण होना बड़े सौभाग्यकी बात है।— 'समर मरन पुनि गंगातीरा। २।१६०।३।' हाथमें मोदक = उत्तम लाभकी प्राप्ति। 'दोनों हाथोंमें लड्डू होना'—यहाँ संसारमें रामगुलाम कहलाता हूँ, उनका होकर जीवन बितानेसे लोकमें सुयश लाभ मिला, लोक बना,—यह एक हाथका लड्डू है। और, काशीमें मरनेसे मुक्ति, वह भी गंगातटपर यह सोनेमें सुहागा'–के समान है,—यह परम उत्तम परलोक बना।—यह दूसरे हाथका लड्डू है। 'जीतेमें भी वाह-वाह और मरनेपर भी वाह-वाह'—(ह०)। ठाँय = स्थान, स्थल। जिये = जीवित रहनेकी अवस्थामें। मुये = मरनेपर। लरिको = लड़के भी। = अबोध भी।—गोस्वामीजीके कोई पुत्र न था, अतः यहाँ यह अर्थ होगा। अर्थात् 'सयानेकी तो बात ही क्या अबोध बच्चा भी'। अथवा 'मेरे लड़का भी नहीं है जो सोच करेगा।'— (ह०)। मान = अभिमान, गर्व।

पद्यार्थ—संसारमें श्रीजानकीजीवनका जन कहलाकर जीवनके दिन बिता रहा हूँ, मरनेके लिए काशी और गंगाजी-का जल है (अर्थात् काशीमें गंगातटपर निवास है)। ऐसे स्थान (सुयोग) मे जिसके जीवित रहनेकी अवस्थामें एवं मर जाने-पर (सयाने लोगोंकी तो बात ही क्या, अबोध) बच्चे भी सोच न करेंगे, (उस) तुलसीके दोनो हाथोंमें लड्डू है। झूठा हूँ अथवा सच्चा, सब लोग मुझे 'राम का' अर्थात् (रामभक्त) कहते हैं और मेरे मनमें (भी) गर्व है कि मैं ('रामका' हूँ)

न शिवका हूँ न विष्णुका। मैं शरीरकी (जिस) भारी असह्य पीड़ासे व्याकुल हो रहा हूँ, उसे भी श्रीरघुवीरके सिवा और कौन दूर कर सकता है? ।४२।

टिप्पणी—१ 'जीवों…लरिको'के भाव शब्दार्थमें आगये हैं। 'झूठो साँचो लोग रामको…' में 'जग कहै रामको प्रतीति प्रीति तुलसीहूँ झूठे साँचे आश्रय साहिब रघुराउ मैं।', 'भलो पोच रामको कहैं सब नर नारी।', 'साँच कैधों झूठ मोको कहत कोउ-कोउ राम रावरो…' (वि० २६१, १५०, २०८) के भाव हैं। सब आपका कहते हैं; अतः 'विरुदकी लाज' रक्खेंगे। (वि० २०८)।

२ 'न हर को न हरि को'—वि० २५० में कहा है कि 'सेए न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी हितु कै न माने हरिउ न हरु।' अर्थात् अपने कल्याणके लिये कभी उनकी उपासना नही की, मैं अनन्य रामनिष्ठ हूँ। अतः उनसे दुःख दूर करनेकी प्रार्थना ही क्यों करूँगा और करूं भी तो वे क्यों सुनने लगे? क० ७।७८,७७ में भी इस स्वभावका दर्शन करिये,—'ईस न गनेस न दिनेस न धनेस न सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने। तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबे को, बैठें-उठें जागत-बागत सोये सपने। तुलसी है बावरो सो रावरोई रावरी सौं रावरेऊ जानि जियँ कीजिये जु अपने। जानकीरमन मेरे! रावरे बदन फेरें ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने॥'

३ 'सकै दूरि करि को' में 'नामकी ओट पेट भरत हों पै कहावत चेरो। जगत बिदित बात ह्वै परी समुझिये धों अपनपै लोक कि वेद बड़ेरो॥ ह्वै है जब तब तुम्हहिं तें तुलसी को भलेरो। वि० २७२।' का भाव है।

४३—घनाक्षरी

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित,
हित उपदेस को महेस मानो गुरु कै।
मानस बचन काय सरन तिहारे पाय[1],
तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर कै॥
ब्याधि भूत-जनित उपाधि काहू खल की,
समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै।
कपिनाथ रघुनाथ भोरानाथ[†] भूतनाथ,
रोग-सिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै॥४३

शब्दार्थ—सहाय = सहायता करनेवाले; आश्रय। नित = नित्य, सदा। उपदेश = शिक्षा। हित उपदेश = हितकी बातकी शिक्षा देना। कै = करके। सुर = देवता; पूज्य व्यक्ति। मानो = माना; स्वीकार किया; आदर किया। मानस = मन। पाय = पाकर। = पाँव, चरण। व्याधि = रोग। उपाधि = उपद्रव, उत्पात। समाधि = समाधान; मनका संदेह दूर करनेवाली बात; शान्त। फुर = सच्चा। डारियत = डालते। गाय खुर कै डारियत = गोपदके गड्ढेके समान कर डालते।

पद्यार्थ—श्रीसीतापतिको स्वामी, श्रीहनुमान्‌जीको नित्य-के सहायक और श्रीमहादेवजीको हितोपदेशके लिये गुरु करके (अर्थात् गुरुरूप या गुरुसमान) माना है। मन-वचन-तन से

१ पाय--ह०, ज०, सु०, श०। पाँय--व०। पायँ- छ०, च०, पं०।
† भोरानाथ--ह०, ज०, सु०, श०। भोलानाथ--छ०, च०, प०, व०। वैजनाथजीका पाठ—'रघुनाथ कपिनाथ भोलानाथ' है।

आपके चरणोंकी शरण हुआ (वा, आपकी शरण प्राप्तकर) आपके भरोसे (आपके बलपर) मैंने देवताओंको देवता करके नहीं माना। रोग भूत-प्रेतद्वारा उत्पन्न किया हुआ है या किसी दुष्टका किया हुआ उत्पात है ? अपना सच्चा सेवक जानकर तुलसीदासका समाधान कीजिये। हे कपीश ! हे श्रीरघुनाथजी ! हे भोलानाथ एवं भूतनाथ ! रोगरूपी समुद्रको आप गोपदके समान क्यों नहीं कर डालते ? ।४३।

१ (क) 'सीतापति'का भाव कि जिनके समान सदा एक-रस सरल शील स्वभाववाला महान ऐश्वर्यवाला नहीं है,— 'हरि हरहि-हरता बिधिहि बिधिता श्रियहि श्रियता जेहि दई।...' वि० १३५ , जिसे अपनी रुचिकी अपेक्षा सेवककी रुचि प्रिय है, जो शूरवीर, सुजान, सेवकसुखद हैं, जिसे अपनी बिरुदावलीकी लाज है, इत्यादि। उनको मैंने स्वामी-रूपमें वरण किया है। क्योंकि इनके समान दूसरा स्वामी नहीं है। यथा 'सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ। वि०१६१।', 'तुलसी रामहि आपुतें, सेवककी रुचि मीठि। दो० ४८।'(ख)— 'सहाय हनुमान नित'—वज्र शक्र रवि राहुके भी गर्वको चूर्ण कर-डालनेवाले होनेसे जिनका नाम 'हनुमान्' हुआ, वे ही मेरे सदा सहायक है, इनको मैंने सहायकरूपमें वरण किया है। (ग) शिवजी हितोपदेश करते आये, अत. उनको गुरु माना। इन्होंने रामचरितमानसकी रचनाकी आज्ञा दी थी।

२— तुम्हरे भरोसे सुर...' इति। ऐसे महान् समर्थोंने अपनी शरणमें लिया, अतएव छुटभइयों कीमैंने पर्वाह नहीं की। यथा 'कृपा जिनकी कछु काज नहीं न अकाजु कछू जिनकें मुख मोरें। करै तिनकी परवाहि ते, जो बिनु पूँछ-बिषान फिरैं दिन दौरें। तुलसी जेहिके रघुनाथ-से नाथ समर्थ सुसेवत रीझत

थोरें। कहा भवभीर परी तेहि धौं बिचरै धरनी तिन्ह सों तिनु तोरें। क० ७।४६।' देवताओंको पूज्य नहीं माना, उनकी सदा निंदा ही की। यथा—'प्रीति न प्रवीन नीतिहीन रीतिके मलीन मायाधीन सब किये कालहू करम।···रीझि-रीझि दिये वर खीझि-खीझि घाले घर आपने निवाजेकी न काहू के सरम। वि० २४६।', 'और देवन्ह की कहौं कहा स्वारथहिं के मीत। वि० २१६।', इत्यादि।

३ 'कपिनाथ···'—सहायकरूपमें इन्हींको वरण किया है. अतः इन्हींको प्रथम संबोधित किया। श्रीरघुनाथजी स्वामी हैं, कपिनाथ उनके सेवक हैं, अतः वे आज्ञा दे दें तो श्रीहनुमान्‌जी तुरन्त रोग-सिंधुके पार कर देंगे। श्रीशंकरजी हितोपदेशक हैं, अतः उनसे प्रार्थना है कि आपके किसी भूतद्वारा यह उपद्रव आ खड़ा हुआ हो, तो मेरे हितके लिये स्वयं अथवा अपने वानरविग्रहद्वारा इसको शान्त कर दीजिये। काशीमें रहते हुयेभी मैंने कभी आपसे निहोरा नहीं किया, परन्तु आपके किसी किंकरकी यह हरकत (करनी) जान पड़ती है, इससे आपसे कहता हूँ। यथा—'गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे। अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे। वि०८।', 'अधि भूत बेदन विषम होत भूतनाथ तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हों। क० ७।१६६।', 'रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसीको भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हौं। क० १६७।', 'तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथही के मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये। क० १६८।' —इन उद्धरणोंमें 'भूतकृत' बाधाके संबंधसे 'भूतनाथ' संबोधन आया है और सुधार (हित) करनेके संबंधसे 'गुरु' शब्दका भी प्रयोग हुआ है।

४४—घनाक्षरी

कहौं हनुमान सों सुजान राम राय सों,
कृपानिधान संकर सों सावधान सुनिये* ।
हरष विषाद राग रोष गुन दोष मई,
विरची विरंचि सब देखियत[1] दुनिये ॥
माया जीव काल के करम के सुभाय के,
करैया राम वेद कहैं साँची मन गुनिये ।
तुम्ह ते कहा न होइ हा-हा सो बुझैये मोहिं,
हौंहूँ रहौं मौन ही बयो सो जानि लूनिये ॥४४

शब्दार्थ—सों = से । सावधान = सजग, सचेत वा सतर्क होकर; दत्त चित्त होकर । मई (मयी)—तद्धतिका यह प्रत्यय 'मय' यहाँ 'विकार' अर्थमें आया है । = सनी हुई; मिश्रित; मिली हुई । विरची = निर्माण की; बचाई । देखियत = देखा जाता है । सब दुनिये = सारी दुनिया (संसार) को ही । गुनिये = जँचती है; प्रतीत होती है । हा-हा—यह शब्द खेद-सूचक है जो कष्टके समय निकलते हैं । 'हा-हा खाना' विनती करनेके अर्थमे प्रयुक्त होता है । बुझाना = बोध कराना; समझाना; संतोष देना । 'बुझैये' शब्दसे जनाया कि यह बात मुझे पहेली-सी जान पड़ती है, मेरी समझमें नहीं आती; अतः आप समझा दें । हौंहूँ = मैं भी । मौन = चुप । बयो सो = जो बोया है

* तुकान्तमें 'यै' [ह०, मु०], 'ए' [छ०, च०], 'ये' औरोंमें ।
१ देखियति--ह० । देखियतु--छ०, च०, पं० । देखियत--औरोंमें ।

वही। लुनना = काटना। वयो सो लुनिये—अर्थात् जो कर्म किये हैं, उन्हीका फल भोग रहा हूँ।

पद्यार्थ—श्रीहनुमानजी! सुजान श्रीरामचन्द्रजी महाराज! और कृपासिंधु श्रीशंकरजी! मैं आप तीनों) से कहता हूँ, आप दत्तचित्त होकर सुनिये। देखा जाता है कि विधाताने सारे संसारको ही हर्ष-विषाद, राग रोष और गुण-दोषमय निर्माण किया है। वेद कहते हैं कि माया, जीव, काल कर्म और स्वभावके करनेवाले श्रीराम हैं। (मेरे) मनमें (यह बात) सच्ची जँचती है। (तब) हा-हा! (बड़े खेदकी बात है) आप लोगोंसे क्या नहीं होसकता? मैं विनती करता हूँ। यह बात (मेरी समझमें नहीं आती) आप मुझे समझा दीजिये। (तब) यह जानकर कि जो वोया था वही काट रहा हूँ, मैं भी चुप हो जाऊँ।४४।

टिप्पणी—१ 'कहौं हनुमान सों···' इति। 'हनुमान् सों' अर्थात् जो अपने कर्मों द्वारा त्रैलोक्यमें 'हनुमान' नामसे विख्यात हैं। पद ४ (१), ४२ देखिये। 'सुजान रामराय' अर्थात् जो हृदय की रुचि, लालसा आदि, विना कहे ही भीतरकी एवं बाहरकी सब कुछ जाननेवाले हैं; यथा 'राम सुजान जानि जन जी की। २।३०४।४।', 'स्वामि सुजानु जान सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की। २।३१४।३।' 'राम राय सो' का भाव कि जो ब्रह्मादिकके संकोचवश रघुकुलमें अवतीर्ण हो राजा हुए और यहाँ रहते हुये जिन्होंने अनेक दीनोंका जा-जाकर उद्धार किया तथा। जिनके राज्यमें सत्ययुग चारों चरणसे पूर्ण रहा,—"दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥ नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।"—उनसे कहता हूँ;—भाव यह कि मेरे राजा आपही हैं, मैं आपके राज्य में हूँ; (यथा

'राजा मेरे राजा राम अवध सहरु। वि० २५०।'); तब मुझे यह दुःख क्यों व्याप रहा है ? ऐसा तो न होना चाहिये। 'कृपा-निधान'का भाव कि आप करुणावरुणालय हैं; आप बड़े कृपालु हैं, जीवमात्रपर आपकी कृपा है, देववृन्दको जलनेसे बचाया; यथा 'जरत सकल सुरबृन्द बिषम गरल जेहिं पान किय।··· को कृपाल संकर सरिस। कि० मं०।' काशीवासी आपको परम प्रिय हैं। मैं काशीनिवासी भी हूँ और मुझे यह वेदना जलाये डालती है, फिर भी आप देख रहे हैं, कृपा नहीं करते।

२—'सावधान सुनिये' इति। भाव यह कि बहुत विनय कर चुका, आप तीनोंकी विरुदावली भी आपको सुना दी। कुछ शुनवाई नहीं हुई। बस बहुत हो चुकी, अब यहीं समाप्त करता हूँ, आगे विनती नहीं करूँगा। अतः मैं आपको सावधान करता हूँ, आप दत्तचित्त होकर सुन लें, पीछे उलहना न दें। मेरे इसी कथनपर निबटारा है। वि० पद २५८ में भी कुछ इसी भावके वाक्य हैं; यथा 'सुधा सों सलिल सूकरी ज्यों गह-डोरिहौं। राखिये नीके सुधारि नीचु कै डारियै मारि, दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं॥' क० ७।१६५ में श्रीशंकरजीसे भी कुछ ऐसाही कहा है। यथा 'एतेहू पर जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं। पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजो मोहि कालकला कासीनाथ कहें निबरत हौं॥'

३ 'हरष बिषाद···'—सारी सृष्टि द्वन्द्वयुक्त है, कोई भी रचना गुण और दोषसे खाली नहीं है। यथा 'कहहि बेद इति-हास पुराना। बिधि-प्रपंच-गुन-अवगुन साना। १।६।४।', 'जड़ चेतन गुनदोषमय बिश्व कीन्ह करतार। १।६'

४ 'माया जीव काल···'—'माया और जीव आदिके करैया' का भाव कि ये सब श्रीरामजीकी आज्ञामें चलते, उनका

रुख देखते रहते हैं, उन्हींकी प्रेरणानुसार कार्य करते हैं, आज्ञाके प्रतिकूल कोई नहीं चल सकता। श्रीराम सबके प्रेरक हैं, इनका प्रेरक कोई नहीं। यथा 'विधि हरि हर ससि रवि दिसिपाला॥ माया जीव करम कुलि काला॥...राम रजाइ सीस सबही के॥ २।२५४।', 'काल विलोकत ईस रुख...। दो० ५०४।', 'उर प्रेरक रघुबंसबिभूषन। ७।११३।१।', 'जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। १।१२४।', 'राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं। २।२६८।७।', 'प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। ५।५६।८।', 'काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत। रामनाम महिमाकी चरचौ चलें चपत। वि० १३०।', 'काल करम सुभाउ गुन भच्छक। ७।३५।८।', 'परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। १।१३७।३।' (नारद वाक्य), —भाव यह कि जब सब आपके अधीन हैं, आपही सबके नियामक एवं प्रवर्तक हैं और मैं आपका सेवक हूँ, आप सब कुछ करनेको समर्थ हैं; तब क्या कारण है जो मेरा दुःख नहीं मिटाते? आप क्या करनेमें असमर्थ हैं, यह समझमें नहीं आता, आप समझा दें तो मैं मौन होकर बैठ जाऊँ कि कर्मभोग है (आपके वशकी बात नहीं है)।

श्रीहनुमदर्पणमस्तु। श्रीहनुमच्चरणौ शरणं मम
श्रीहनुमते नमो नमः।